संघशक्ति

4 अक्टूबर, 2017

वर्ष : 54 अंक-10

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह वेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	07
❍ उपासना	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	08
❍ जयन्तियाँ	✍ श्री व्यथित	10
❍ क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति : दुर्गादास राठौड़	✍ श्री रेवंतसिंह पाटोदा	11
❍ मायड़ रौ हेलौ	✍ श्री मदनसिंह सोलंकिया तला	12
❍ वालेरा वाला	✍ स्वामी श्री सच्चिदानन्द	13
❍ मेड़ताधीश वीरवर राव जयमल मेड़तिया...	✍ डॉ. शक्तिसिंह 'खाखड़की'	15
❍ मैं उसको ढूँढ रहा हूँ-7	✍ श्री महेन्द्रसिंह गूजरावास	21
❍ विचार-सरिता (चतुर्विंश लहरी)	✍ श्री विचारक	20
❍ गुजरात में सोलंकी कुल का शासन	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	23
❍ कहानी	✍ संकलित	26
❍ कठोरता का विसर्जन ही करुणा है	✍ श्री जयसिंह खानपुर	28
❍ सोच को बदलो!	✍ श्री पेपसिंह कल्लावास	29
❍ भक्त शिरोमणि मीरा बाई	✍ श्री ब्रजराजसिंह राजावत खरेड़ा	30
❍ अपनी बात	✍	32

समाचार संक्षेप

शिविर :

श्री क्षत्रिय युवक संघ संस्कार निर्माण का कार्य कर रहा है। इसके लिये सामूहिक संस्कारमयी कर्मप्रणाली अपनाई गई है। सामूहिक संस्कारमयी कर्म प्रणाली के लिये माध्यम है दैनिक शाखाएँ और शिविर। दैनिक शाखाओं में निरन्तरता, नियमितता से अभ्यास होता है और शिविरों में पूरे दिन की दिनचर्या में संघ-प्रशिक्षण समाहित है। इसलिए स्वयंसेवक को निरन्तर शाखा में आते रहना चाहिए और शिविर भी करते रहना चाहिए। यदि परिवार, समाज और बाहर का वातावरण अनुकूल हो तो संस्कारमय जीवन का आधार निर्माण होने में अधिक समय नहीं लगता, परन्तु आज तो चारों तरफ ही वातावरण इतना संस्कार विहीन है कि शाखा या शिविर के अलावा विपरीत वातावरण की बयार ही बह रही है। इसलिए संघ से जुड़े रहकर शाखा व शिविर का सम्पर्क बना ही रहना चाहिए।

गत वर्ष के उच्च प्रशिक्षण शिविर पुष्कर के पश्चात भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम बाड़मेर में विभिन्न प्रान्तों से 120 शिविरों के प्रस्ताव आए और राजस्थान व गुजरात के अलावा अन्य प्रदेशों में होने वाले शिविरों का निश्चय वहाँ के सहयोगियों से सम्पर्क के बाद करना तय हुआ।

सत्र के शिविर जून माह से ही प्रारम्भ हो जाते हैं। जून माह में साधाणतया एक-दो शिविर ही हुआ करते हैं पर इस बार 9 शिविर सम्पन्न हुए। इनमें एक बाल शिविर व एक बालिका शिविर है, शेष बालकों के प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर थे। जिनमें से एक उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले में तथा दो शिविर गुजरात में सम्पन्न हुए। जुलाई माह में शिक्षा सत्र प्रारम्भ होता है, जहाँ रविवार के आसपास कोई छुट्टी मिल जाए तो इस माह में भी शिविर होते हैं। इस बार जुलाई में पाँच शिविर सम्पन्न हुए जिनमें एक बाल शिविर व एक शिक्षक शिविर था। शेष बालकों के प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर थे। इनमें से 2 शिविर गुजरात के थे।

अगस्त से आगे छुट्टियों का सुयोग बनता है, इसलिए अब अधिक शिविर होते हैं। इस वर्ष अगस्त मास में 17 शिविर हुए। इनमें से 3 बाल शिविर थे, एक बालिका शिविर था, एक गुजरात का प्राथमिक शिविर था और शेष 12 शिविर बालकों के प्राथमिक शिविर थे। सितम्बर माह में कुल 40 शिविर सम्पन्न हुए। इनमें से 2 बाल शिविर थे, एक बालिकाओं हेतु माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर था, एक बालिकाओं हेतु गुजरात में प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर था, 5 बालकों हेतु गुजरात में शिविर हुए तथा शेष 31 प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर बालकों हेतु राजस्थान में सम्पन्न हुए।

कुछ प्राथमिक प्रशिक्षण शिविरों में शिविरार्थियों की संख्या 250 से 300 के बीच रही तो एक शिविर में तो 300 से भी पार रही। माध्यमिक व उच्च प्रशिक्षण शिविरों में सीधे नये स्वयंसेवक नहीं आ सकते इसलिए पहले प्राथमिक शिविरों में शिविरार्थियों की उपस्थिति बढ रही है। नए स्वयंसेवक भी दो प्राथमिक शिविर कर लेंगे तो वे माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर में भाग लेने के पात्र हो जाएंगे। अक्टूबर और दिसम्बर में माध्यमिक शिविर होंगे, तब तक नए लोग पात्रता हासिल कर सकते हैं। माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर कर लेने के बाद वे उच्च प्रशिक्षण शिविर के लिये पात्र बन जाएंगे। उच्च प्रशिक्षण शिविर मई माह में विद्यालयों की छुट्टियों में होता है। इस वर्ष एक उच्च प्रशिक्षण शिविर दिसम्बर माह में भी प्रस्तावित है।

शिक्षण कार्य की पूर्ति के लिये शिविर अत्यन्त आवश्यक है। शाखाओं में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न शिक्षक शिक्षण कार्य करते हैं, उन सब में समानता हो, यह आवश्यक नहीं। सबका स्तर अलग-अलग है, शिक्षण देने के तरीके में भी थोड़ी भिन्नता हो जाती है, जबकि सभी समान पाठ्यक्रम पर कार्य कर रहे हैं। शिक्षण की इस भिन्नता के प्रभाव को मिटाकर समान करना आवश्यक है अन्यथा संगठन की भिन्न-भिन्न कड़ियाँ संगठन के स्वरूप को ही बदल देंगी। शिविरों में समान शिक्षण द्वारा सभी को एक ही प्रकार के सांचे में ढालना, समानता लाना संभव है। शाखाओं में कार्य का विस्तार होता है, नए-नए स्वयंसेवक आते हैं, संघ से जुड़ते हैं और प्रशिक्षण प्रारम्भ होता है, शिक्षण की शेष प्रक्रिया शिविरों में होती है जहाँ पूर्ण रूप से अनुकूल वातावरण मिलता है और सामूहिकता का पूरा लाभ मिलता है। साधक को अपनी समस्त शंकाओं का समाधान भी शिविरों में मिल जाता है।

*

चलता रहे मेरा संघ

(श्री क्षत्रिय युवक संघ के स्थापना दिवस 22 दिसम्बर, 2009 को जयपुर के कार्यक्रम में संघप्रमुखश्री भगवानसिंहजी का उद्‌बोधन)

आज का दिन श्री क्षत्रिय युवक संघ के स्वयंसेवक के लिये गौरव का दिन है क्योंकि श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना आज के दिन हुई थी। आज का दिन जयपुर के लिये भी गौरव का दिन है क्योंकि आज के दिन समाज में फैले गहन अंधकार में संघ के रूप में एक दीपक का प्रज्वलन नये रूप में इसी नगरी में हुआ था। राजस्थान के लिये भी यह महत्त्वपूर्ण दिन है कि इसी में संघ की स्थापना हुई और एक शक्ति की आशा का जन्म हुआ। संपूर्ण राजपूत जाति के लिये भी गौरव का विषय है कि कर्तव्य विमुख हुई इस राजपूत जाति को सही दिशा में सोचने और बढने का अवसर प्रदान किया है। हमारे राष्ट्र भारत के लिये भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दिन है क्योंकि समय-समय पर इस भूमि पर महापुरुषों ने अवतार लेकर अत्याचार को मिटाने के लिये राह दिखाई है, उसी राह पर चलकर पूरे भारतवर्ष को और संपूर्ण मानव जाति को पुन: राह बताई है। जो उत्तम था, उस सबका आज क्षरण हो रहा है। उस क्षरण को रोक कर सद् को बचाने के प्रयत्न का दिन आज है।

22 दिसम्बर का दिन एक महत्त्वपूर्ण दिन है। ऋतु में बदलाव, सूर्य की दिशा में बदलाव। मानव जाति ने आज क्षत्रिय के माध्यम से करवट बदलने की आशा जगाई है। हम लोग इस बात को महत्त्व दे नहीं पाए क्योंकि हम संकुचित घेरों में उलझ रहे हैं। हम एक महान कार्य में लगे हुए हैं, यह कहने में हमें शर्म आती है। संघ का दर्शन ऐसा प्रकाश पुञ्ज है जो पूरी मानवता को राह बताने वाला है लेकिन हम तो यह कहते हुए भी लजा रहे हैं। हम अपने आपको महत्त्व नहीं दे पा रहे हैं।

हम भूले हुए वे राही हैं, जो संपूर्ण क्षमताओं को समेटे हुए होते हुए भी अपने आपको क्षुद्र मान रहे हैं। हम इस महान कौम, महान देश के महान पूत हैं। क्षत्रिय युवक संघ ने प्रतिभाओं की खोज के कार्य में सैंकड़ों को पहचाना है जो विशिष्टता धारण किए हुए हैं। आज का दिन जामवन्त की तरह हमें हमारी क्षमताओं की याद दिलाता है कि हवा के रुख को मोड़ देने वाली क्षमताओं को समेटे हुए होकर भी क्षुद्र घेरों में फँसे हुए हो इसलिए अपने आपको क्षुद्र माने बैठे हो। श्री क्षत्रिय युवक संघ जगा रहा है, याद दिलाता है कि देखो संसार कहाँ जा रहा है। तुम तो उलझनों को सुलझाने वाले हो, पतितों को उठाने वाले हो, अपने आपको क्षुद्र मत समझो। यह समझ की भूल हो सकती है पर हम महान हैं क्योंकि हम परमेश्वर की संतान हैं, वह क्षुद्र नहीं है, महान है अत: संतान भी महान है। हम आलस्य, प्रमाद में फंस जाते हैं पर हम क्षुद्रता के लिये नहीं श्रेष्ठता के लिये जन्मे हैं। अनेक जीवन लेकर भी भगवान का काम करेंगे।

निराशा की आवश्यकता नहीं, गीता का उपदेश हमारे में हमारा स्वाभाविक कर्तव्य करने के भाव पैदा करता है। निराधार धारणा जो बना रखी है, उसे छोड़ो। बस मान लो कि हम सब कुछ कर सकते हैं। अत: परिस्थितियों के गुलाम न बनें। सांसारिक दायित्व निभाने, नौकरी, विवाह, परिवार पालन आदि सभी करेंगे पर लिप्त होकर नहीं। कृष्ण, जनक, राम, बुद्ध, महावीर ने अपने ही जीवन को आधार बनाकर हमें आचरण की राह दी है। पू. तनसिंहजी ने अपने जीवन से भगवान का संदेश दिया है कि हमारी भूल हमारी नेष्ठता है। राजूपत का दायित्व क्या है, उसकी महानता क्या है, उस स्मृति का दिन है आज।

हथियार डालकर अर्जुन ने कहा-मेरे लिये हितकर क्या है, वह बताओ। हम भी हताश हो गए हैं। संघ का स्वयंसेवक इतना निराश क्यों? इसलिए कि भगवान के दिये संदेश को समझा नहीं। पू. तनसिंहजी के संदेश की गंभीरता को समझ नहीं पाए। थोड़ी त्वरा आती है, कार्य करते हैं, पर फिर हथियार डाल देते हैं। पर कृष्ण हार मानने वाला नहीं। संघ भी हार मानने वाला नहीं। हम आम दुनिया वाले नहीं, उद्धार करने व रुख मोड़ने वाले हैं। मैं अनुभव करता हूँ कि संघ के अतिरिक्त अन्य कोई

रास्ता नहीं,आना यहीं पड़ेगा। सभी कार्य करो, दायित्व निभाओ पर स्मरण संघ का रखो।

आज का दिन याद करवाता है-हम क्षुद्र नहीं, मन में कोई दरार नहीं। हम तो भव संसार की दरार पाटेंगे। विरोध होगा पर हमारी बात सत्य सनातन है। पू. तनसिंहजी ने वही काम किया जो महापुरुषों ने समय-समय पर किया। गीता के माध्यम से हमें राह दिखाई है। तनसिंहजी ने हमें गले लगाया, संघ ने हमें गले लगाया। बुद्धम् शरणम्.....संघम् शरणम्.....धर्मम् शरणम गच्छामी। इसे स्वीकार करो। बुद्ध वह, जो जाग गया। तनसिंहजी जागे, उनकी शरण में जाएँ, आत्मोदघाटन करें। तनसिंहजी संघ में तब तक रहेंगे जब तक संघ उनकी कही बात पर चलेगा। तनसिंहजी की बात को मानते रहेंगे तब तक हम भी संघ में रहेंगे। हमारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य है, भगवान का दिया हुआ दायित्व निभाते रहें। तनसिंहजी ने माला फेरने पर जोर नहीं दिया। अपने कर्तव्य का पालन करना ही माला है। यही पूजा-अर्चना है, यही उपासना है। इस मार्ग पर चलते रहना ही भगवान की ओर बढना है।

मुक्ति की दूसरी कोई परिभाषा नहीं, बस इस कर्तव्य मार्ग पर बढते ही रहना है। कोई व्यसन में उलझे हैं, प्रमाद छा गया है, पर चिंता नहीं, विश्वास बनाए रखें कि संघ में बने रहे तो संघ हमसे भगवान का काम करवाएगा। पर सावधानी बनाए रखें और देरी क्यों करें। जो भूल गए हैं, भगवान उनको भी भरोसा दिलाते हैं कि वापस तुम्हें सही मार्ग दिखाऊँगा। क्योंकि मैंने तुमको इसीलिए तो भेजा है। जन्म ले लिया और भगवान के सौंपे हुए दायित्व को नहीं निभाया तो बार-बार आना होगा और प्रकृति अपना काम करवा लेगी।

श्री क्षत्रिय युवक संघ हमें सिखाता है कि कौम हमारी है, राजस्थान प्रदेश हमारा है, भारतवर्ष हमारा है, मानवता के हम अंग हैं, सृष्टि में ही हम हैं अत: इन सबके कल्याण कार्य में लगे रहना हमारा दायित्व है। शरीर, परिवार, वासनाओं ने अगर हमको मोह में उलझा कर हमारे दायित्व पालन से भटका दिया है तो क्षत्रिय युवक संघ हमारा मोह नष्ट करने का मार्ग है। गीता का उपदेश सुनकर, अपनी सभी शंकाओं का निवारण होने पर अर्जुन ने कहा था-नष्टो मोह स्मृतिर्लब्धा...। संघ भी हमें याद दिलाता है कि सौ बार भी जन्म लेना पड़ेगा तो भी काम तो भगवान का ही करना है, इसलिए स्मृति को पाने के लिये आज के दिन को याद रखें। तनसिंहजी को याद रखें, संघ को याद रखें। संत लोग भी यही कहते हैं कि इस काम को जीवन भर छोड़ना मत।

भूलें नहीं कि स्वयंसेवक होना बहुत महत्त्वपूर्ण है। छोटे-छोटे कामों में उलझो मत, उनसे बाहर निकलो, शेष भगवान स्वयं मार्ग दर्शन करेंगे। फिर कमियों वाला संसार भी सहयोगी लगेगा, यह भगवान की करुणा होगी। आज के दिन को मंगलमय दिन मानें, गौरव का दिन मानें, संघ द्वारा याद दिलाए गये दायित्व के मार्ग पर चलें, विजय निश्चित होगी। भगवान को भूलें नहीं, उन्होंने हमें महान कार्य का माध्यम बनाया है, इसे याद रखें।

संसार के दोषों से हताश न हों। दोषों को दूर करने के लिये ही तो अवतार आते हैं। राम का जन्म हुआ तो यही तो उद्देश्य रहा। विश्वामित्र राम को मांगने आए तो दशरथ विचलित हो गए थे लेकिन उन्होंने जाकर राक्षसों का संहार किया। ऐसी घटनाएँ होती रही हैं हम भी राम व कृष्ण की संतान हैं, भरोसा रखें, प्रकृति की लीला देखें पर स्मरण रखें कि मैं संघ का स्वयंसेवक हूँ, अत: पथ से भ्रष्ट न हो जाऊँ, बाकी सब भगवान पर छोड़ें।

परमेश्वर से प्रार्थना करें कि पू. तनसिंहजी का सोच हमारा सोच बन जाए। वही तो राम व कृष्ण का सोच था। समय कितना लगता है इसके लिये चिन्तित न हो, स्मृति बनाए रखें, उससे बेड़ा पार हो जाएगा। प्रयोग करके देख लीजिए, संघ हमें सब कुछ देगा। पर नश्वर वस्तु का क्या माँगना। आनन्द माँगें, हमारी और संसार की खैरियत मांगें। कर्जदार बनाना हो तो भगवान को बनाओ। द्रोपदी का ऋण था तो उन्हें आना पड़ा। संकट से पार वही लगाएंगे अत: उनका काम करके उन्हें कर्जदार बनाएँ। स्मृति रखें कि मैं भगवान का पुत्र हूँ-उसी का काम करूंगा। क्षत्रिय युवक संघ की व्यवस्था भी भगवान ने बनाई है, वह भगवान का ही काम है। इसी स्मृति में सार है। आज का दिन यह याद दिलाता है।

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

इस संसार में अच्छाई व बुराई दोनों का वास है। संसार में अच्छाई भी है, तो साथ में बुराई भी। न तो अच्छाई का कभी समूल नाश हुआ है और न बुराई का कभी समूल नाश हो सकता है। समूल नाश किसी का भी नहीं होता। न्यूनाधिक रूप में कोई न कोई तो रहती ही है। कभी अच्छाई का बाहुल्य हो जाने पर वह बुराई पर हावी हो जाया करती है तो कभी बुराई का पलड़ा भारी हो जाने पर वह अच्छाई पर हावी हो जाया करती है।

आदमी कितना भी बुरा क्यों न हो, उसमें कोई न कोई अच्छाई तो जरूर मिलेगी। रावण जैसा अत्याचारी व दुराचारी आदमी और कौन हो सकता है? वह अनिष्टकारी व भ्रष्ट आचरण वाला था, पर उसमें भी अच्छाई थी। वह चला तो सदैव अनीति पर, पर बताते हैं वह बड़ा ही नीतिज्ञ था। रावण जब मरणासन्न था, तो राम नहीं चाहते थे कि उसकी अच्छाई उसके साथ ही समाप्त हो जाय, इसलिये राम ने लक्ष्मण को उनसे शिक्षा लेने हेतु रावण के पास भेजा। लक्ष्मण व रावण के बीच जो संवाद चला–

रावण तुम सा योद्धा जग में, तुम सा न आन वाला कोई।
तुम नीति विशारद पण्डित हो, तुम सा न ज्ञान वाला कोई।।
इसलिए मृत्यु से पहले तुम, कुछ नीति सिखाते जाओ हमें।
हे विज्ञानी अपना अनुभव, कुछ तो बतलाते जाओ हमें।।
बोला अब इतनी शक्ति नहीं, जो नीतिशास्त्र का वर्णन हो।
हाँ इतनी साँसें बाकी हैं जिनसे कुछ आज्ञा पालन हो।।
दो बातें केवल कहनी है, शुभ कार्य शीघ्र करना अच्छा।
दुष्कार्य टले जितना टालो, उसका सदैव टलना अच्छा।।
मैंने सोचा था स्वर्ग तलक जाने का मार्ग बनाऊँगा।
पर आज आज करते करते मुझसे कर्तव्य रह गया वह
मन ही में रही भावना वह, रह गई अपूर्ण योजना वह।।

अच्छाई कहीं भी क्यों न हो, उसे ग्रहण किया जाना ही बुद्धिमता है। इन्सानियत का यही तकाजा है कि बुरे व्यक्ति की बुराइयों को देखने के बजाय उनकी अच्छाइयों को देखें और उन्हें ग्रहण करते जायें तथा बुराइयों को त्यागते जायें। जैसा कि कबीर जी ने कहा है–

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप स्वभाव।
सार सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय।।

पिलानी में स्नातक की शिक्षा पूरी करने के बाद आगे कानून की पढाई के लिये पूज्य श्री तनसिंहजी नागपुर गये। उस समय नागपुर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) के क्रियाकलापों का केन्द्र था। उस वक्त RSS की कमान माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर जी सम्भाल रहे थे जिन्हें गुरुजी भी कहते थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. केशव बलीराम हेडगवार थे। नागपुर जाने पर पूज्य श्री तनसिंहजी गोलवलकरजी के संपर्क में आये। इनकी कई बातें पूज्य श्री को बहुत अच्छी लगी। गुरुजी की इन बातों से पूज्य श्री तनसिंहजी बड़े ही प्रभावित हुए। उनकी ये अच्छाइयाँ पूज्यश्री के दिल को छू गई और इन अच्छाइयों को पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने जीवन में उतार ली, जैसाकि कबीरजी ने कहा है– ''सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय।''

पूज्य श्री तनसिंहजी डॉ. हेडगवार के व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए। उनके जीवन से उन्होंने कई बातें सीखी, जिसके बारे में पूज्यश्री ने जैसा बताया–''तो गुरुजी! सेठ का सदावृत छोड़कर कानून की पढाई के लिये मैं एक बड़े नगर में गया। वह तुम्हारी क्रियाकलापों का केन्द्र है। मेरे जन्म के एक वर्ष बाद ही तुमने यह कार्य प्रारम्भ किया था। यह तुम्हारे व्यक्तित्व का प्रभाव ही था कि भारतवर्ष की जवानी अंगड़ाई लेने लगी। एक नया जोश और एक नया स्वप्न था तुम्हारे दिल में और इसलिए कार्य करने की निष्ठा का पाठ मैंने तुम्हीं से सीखा। आल्पस पर्वत को पार

(शेष पृष्ठ 20 पर)

गतांक से आगे

उपासना

– स्वामी श्री यतीश्वरानन्द

साकार ईश्वर की आवश्यकता :

आधुनिक मानव बड़ी सरलता से कह उठता है : ''ओह! भगवान् सर्वत्र है।'' लेकिन जब वह भगवान के स्वरूप के विषय में सोचने लगता है, तो उसे ज्ञात होता है कि उसकी धारणा अस्पष्ट है। अधिकांश लोगों को ईश्वर सम्बन्धी धारणाएँ केवल अस्पष्ट औ धूमिल होती हैं। निराकार ईश्वर का तथाकथित उपासक चर्च से घर लौटने पर केवल अपनी देह और उसके सम्बन्धियों में व्यस्त हो जाता है। वह आत्मा के स्तर पर उठकर उस अनिर्देश्य निराकार परमात्मा के साथ सम्पर्क बनाने में असमर्थ होता है, जिसके बारे में वह इतनी बातें करता है। जब हमारा देहात्मबोध प्रबल है, जब हम अपने व्यक्तित्व को एकमात्र सत्य मानते हैं, तब हमारी साधना और आध्यात्मिक विकास के लिये एक साकार ईश्वर आवश्यक है।

निम्नस्तर पर निराकार की मान्यता अस्पष्ट-सी हो जाती है, जब कि उच्चस्तर पर वही सत्य हो जाती है। और हम रूप और व्यक्तित्व के जिस निम्नस्तर पर हैं, उस स्तर पर अस्पष्ट धारणाओं की सहायता से मन में उठ रहे सभी अशुभ विचारों और चित्रों का प्रतिकार नहीं कर सकते। उनका प्रतिकार करने के लिए हमें उनके प्रतिद्वन्द्वी शुभ और पवित्र विचार तथा चित्र मन में उठाने में समर्थ होना चाहिए और इसीलिए एक ऐसे दैवी-महापुरुष की आवश्यकता है, जिसमें उच्चतम आदर्श हमें चरितार्थ दिखाई दे। जब तक हम अपनी देह को सत्य समझते हैं, तब तक हमें एक दैवी पुरुषविशेष की आवश्यकता रहेगी। लेकिन साथ ही हमें साकार और निराकार को जोड़ने वाले सूत्र को भी जानना चाहिए। आकार, निराकार की एक अभिव्यक्ति मात्र है। दैवी महापुरुष उस निराकार परमात्मा की अभिव्यक्ति है, जो सभी के आधार के रूप में विद्यमान है।

दैवी व्यक्तिविशेष ससीम और असीम को जोड़ने वाला सूत्र है, और इस प्रकार ग्रहण करने पर वह मस्तिष्क और हृदय दोनों को संतुष्ट करता है। बुद्धि अनन्त चाहती है और भावनाएँ सान्त ससीम चाहती है। और सही दृष्टि से देखने पर, याने परमात्मा की अभिव्यक्ति के रूप में, जिसका उसे सदा बोध बना रहता है, दिव्य व्यक्तिविशेष में हमें दोनों बातें प्राप्त होती हैं।

भगवत् रूप को मन में उठाने के लिये शब्द-प्रतीक ''ओम्'' की सहायता ली जा सकती है। और इसका उपयोग पहले साकार और बाद में निराकार के चिंतन के लिये भी किया जा सकता है। लेकिन प्राय: एक योग्य गुरु द्वारा प्रदत्त शब्द संकेत या मंत्र का उपयोग किया जाता है। साधक को गुरु तथा मंत्र की शक्ति में विश्वास होना चाहिए। जप करते समय मंत्र की आवृत्ति के साथ-साथ शब्द-प्रतीक से सम्बन्धित इष्ट के रूप अथवा निराकार का चिंतन भी करना चाहिए। चेतना का केन्द्र उस अनन्त चैतन्य का अंश है, जो हममें ही नहीं, बल्कि समग्र ब्रह्माण्ड में ओतप्रोत है तथा उसके परे और असीम भी है। पहले शब्द और चिंतन साथ-साथ चलते रहते हैं और बाद में शब्द भगवच्चिन्तन और चैतन्य में लीन हो जाता है। साधना में लगे रहने पर तुम इसके वास्तविक अर्थ को अधिकाधिक हृदयंगम कर सकोगे।

परमात्मा को पाने के एक से अधिक उपाय हैं। हम भी ईसा मसीह को मानते हैं, लेकिन तुम जानते हो, श्रीरामकृष्ण के अनुयायी होने के कारण हम ईसा को परमात्मा का एकमात्र अवतार नहीं, बल्कि अनेक अवतारों में से एक मानते हैं। हमारे सहित समस्त ब्रह्माण्ड ईश्वर की सामान्य अपूर्ण अभिव्यक्ति है। लेकिन ईसा मसीह, बुद्ध, रामकृष्ण आदि को हम अनन्त अक्षर की, बाइबिल और वेदों में वर्णित अनन्त शब्द की, विशेष अभिव्यक्तियाँ मानते हैं। यह धारणा प्राच्यवासी और

पाश्चात्यवासी, दोनों में समान रूप से विद्यमान है। ये पूर्ण-अभिव्यक्तियाँ अपूर्ण अभिव्यक्त रूपों को ज्ञान और सत्य का निदर्शन कराती है। शब्द या अक्षर एकमात्र निराकार निर्गुण सत्ता है। स्थूलतर स्तरों पर वह साकार अथवा मानवी रूप धारण करती है। ये रूप अनेक हो सकते हैं; लेकिन जो अभिव्यक्त होता है, वह एक है। हम सभी महानतम् अभिव्यक्तियों में से एक या अनेक या सभी को स्वीकार कर सकते हैं। लेकिन हम सभी की उस एक अनन्त सत्ता में निष्ठा होनी चाहिए, जो समय-समय पर जगतहित के लिये अवतरित होती है।

यदि आधारभूत सत्ता से पृथक् कोई साकार रूप तुम्हें अच्छा लगे, तो तुम उसकी पूजा और उपासना कर सकते हो। लेकिन ऐसा उस चरम-सत्ता की अनुभूति की सीढ़ी के रूप में करना चाहिए। कालान्तर में वह निराकार परमात्मा जिसका तुम ध्यान करने का प्रयत्न कर रहे हो, तुम्हें यह अनुभूति प्रदान करेगा कि वही साकार के रूप में अभिव्यक्त हुआ है तथा वही सर्वातीत सर्वान्तर्यामी भी है। और उसको उसके पूर्ण तथा सभी अपूर्ण रूपों में भी अर्थात् महान् पैगम्बरों तथा सामान्य स्त्री-पुरुषों में भी पहचानना चाहिए। इस विषय में पूर्व तथा पश्चिम की विचारधारा का कोई प्रभेद नहीं है, क्योंकि परमात्मा सभी सीमाओं से परे है।

शब्द परमात्मा का प्रतीक है, रूप भी परमात्मा का प्रतीक है। इन दोनों प्रतीकों की हम परमात्म-चेतना के जागरण के लिये सहायता लेते हैं। साकार की सहायता से नाम और रूप की शक्ल में अभिव्यक्त हो रही परमात्मा-सत्ता के साक्षात्कार का प्रयत्न किया जाता है। और हम यह अनुभव करते हैं कि हम भी उस सत्ता की अभिव्यक्तियाँ हैं।

साकार में सर्वव्यापी परमात्मा का दर्शन करने के बाद हम उसका प्रकाश स्वयं तथा दूसरों में देख पाते हैं। हमें परमात्मा को अच्छे-बुरे सभी रूपों में, लेकिन अच्छे और बुरे का अन्तर भूले बिना देखना सीखना चाहिए। तब बुरे रूप हमें बिल्कुल प्रभावित नहीं कर सकेंगे। हमें भौतिक जगत के रूपों में ही परमात्मा को देखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए बल्कि हमारे मन में उठ रहे रूपों में भी देखना चाहिए।

जो लोग साकार ध्यान नहीं करना चाहते, उनके लिये अपने तथा दूसरों में परमात्मा को देखने का प्रयास करना ही एकमात्र उपाय है। देह एक मंदिर है, जिसमें आत्मा विराजित है, तथा ईश्वर आत्मा की भी आत्मा है। इसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है। लेकिन कुछ ही लोग इस उच्च आदर्श को लम्बे समय तक पकड़े रह सकते हैं।

उपसंहार :

इस प्रकार हिन्दू धर्म में ''पूजा'' का अर्थ अन्य धर्मों से कुछ भिन्न है। उसे उपासना कहते हैं और जैसा पहले कहा जा चुका है, उसका अर्थ परमात्मा की ओर क्रमश: अग्रसर होते हुए अन्त में उनके साथ एकत्व प्राप्त करना है। स्थूल प्रतिमाओं से प्रारम्भ करके मानसिक प्रतिमाओं और भगवन्नामों के जप तक पहुँचा जाता है और अन्त में आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है। क्रमिक साधनाओं द्वारा देहात्म-बोध और अहंकार अधिकाधिक कम होता जाता है और जीव की प्रसुप्त दिव्यता अधिकाधिक प्रकट होती जाती है। इस यात्रा में जीव विभिन्न स्तरों से गुजरता है तथा अनेक बाधाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ अन्त में पूर्णता को प्राप्त करता है।

आधुनिक युग के लिये जप सर्वश्रेष्ठ उपासना है। जप उपासना के मनोभाव से किया जाना चाहिए। इस मनोभाव के नष्ट होने पर ही वह यंत्रवत् होता है। प्राय: लोग इस मूल बात को भूल जाते हैं। जप की साधना उच्चतर प्रकार की उपासना के रूप में की जानी चाहिए। जप को प्रभावशाली साधना बनाने के लिये श्रद्धा और भक्ति आवश्यक है। इसमें कोई शक नहीं कि यंत्रवत् जप करने का भी कुछ लाभ होता है, क्योंकि भगवन्नाम में भी अपनी अन्तर्निहित शक्ति होती है। लेकिन जब जप श्रद्धापूर्वक एक उपासना के रूप में किया जाता है, तब हमारे समग्र देह, मन और आत्मा उसके द्वारा प्रभावित

होते हैं। जप द्वारा आध्यात्मिक जीवन में सफलता प्राप्त करने का यह रहस्य है।

एक बात सदा याद रखनी चाहिए। हमें देह से अधिक आत्मा को और आत्मा से अधिक परमात्मा को महत्त्व देना चाहिए। देह को केवल आत्मा का निवास स्थान समझना चाहिए और आत्मा को परमात्मा का वासस्थान मानना चाहिए। हमें अपनी आत्मा के साथ अपना एकत्व अनुभव करने का और उसके बाद परमात्मा के साथ संयुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए, जो हमारी आत्मा की भी आत्मा है। इस बात को महत्त्व न देने से हमारा समग्र जीवन एक प्रकार की देह-उपासना बन जाएगा। जो लोग साकार की उपासना को पौत्तलिकता समझकर उसे हीन दृष्टि से देखते हैं, उन्हें यह जानना चाहिए कि स्वयं की देह की उपासना से वह कहीं बेहतर है। इसके विपरीत सच्चे भक्त, परमात्मा को सबमें व्याप्त देखते हैं। इस तरह उनका सारा जीवन परमात्मा की उपासना बन जाता है, और वे परमशान्ति और धन्यता का अनुभव करते हैं।

जयन्तियाँ

– श्री व्यथित

क्षत्रिय समाज ही नहीं, अन्य वर्ण-वर्ग के लोग भी प्रतिवर्ष मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, गीता के गायक योगेश्वर श्रीकृष्ण, शान्ति अहिंसा के पुजारी भगवान बुद्ध, वीरत्व के प्रतीक महाराणा प्रताप, संघर्ष के मूर्त रूप वीर दुर्गादास, हिन्दुत्व के संरक्षक छत्रपति शिवाजी आदि के जन्मदिन बड़े धूमधाम से मनाते हैं। कैसे मनाते हैं? उन महानुभावों की मूर्तियों का दर्शन करके व उनके चित्रों को पुष्प प्रदान करके।

हम शायद ही सोचते हैं कि हमारे दर्शन करने से या पुष्प के दो पत्ते चढाने से ऐसी हुतात्माएँ प्रसन्न होते होंगे? हमारे दर्शन या पुष्पार्जन को वे स्वीकार करते होंगे? हम दर्शन करें या पुष्प चढाएँ, क्या यह उनकी चाह है? हम ऐसे दिवंगतों को क्यों याद करते हैं? क्या हमको भी आने वाली पीढियाँ याद करेंगी? क्यों करेंगी? शायद ही उत्तर हाँ में मिलेगा।

हम जिनकी जयन्तियाँ मनाते हैं, जयनाद करते हैं, उनके जीवन के बारे में हम शायद ही सोचते हैं। यदि सोचेंगे तो उन सभी महानुभावों के जीवन में एक सर्व साधारण तत्व पाएंगे-'व्यथा'। समाज में बुझने जा रही संस्कृति की मशाल, छूटती जा रही परम्परा, निर्बल होती जा रही मानवता, विस्मृत होता जा रहा इतिहास आदि के प्रति भूले जा रहे हमारे दायित्व और कृतज्ञता को देखकर वे अत्यधिक व्यथित हुए थे। उस व्यथा ने उनको न तो चैन से सोने दिया, न शान्ति से खाने दिया। बस उस व्यथा के मारे वे जीवन भर अपनी उस पीड़ा की औषधि स्वरूप निरंतर सक्रिय रहे, भूखे रहे, जगते रहे, कठिनाइयों से लड़ते रहे। हारे भी, गिरे भी मगर पुन: उठकर दो गुने जोश से आगे बढते रहे और इतिहास में अपना नाम अमर कर गये।

पाठक! एक सूक्ति याद रखें-'त्यागे सो आगे'। हम तो त्याग के स्थान पर संग्रह करने में लगे रहते हैं। संग्रह की कोई सीमा तो होती नहीं। ज्यों-ज्यों संपत्ति, साधन, सत्ता बढते जाते हैं उनको अधिकाधिक प्राप्त करने की आकांक्षाएँ बलवत्तर होती जाती हैं। देने के नाम पर कुछ नहीं और लेने के लिए गधे को भी बाप कहने में बहादुरी समझते हैं।

भला इस तरह जी कर मर जाने वाले को और तो और उनके परिवार वाले भी याद नहीं करते कि खाया, पिया, भोगा और गया। उसको तो भुला ही दिया गया। ऐसे तत्व भोगी, स्व अर्थी, स्व केन्द्री लोगों को कौन याद करे? क्यों याद करे? उनकी जयंतियाँ नहीं मनाई जाती। उनका नाम स्मरण नहीं किया जाता।

अत: अब से आगे जब भी किसी भी इतिहास सर्जक महात्मा को याद करें तो संकल्प के साथ करें कि-'मैं भी उन विभूतियों के मार्ग पर चलकर आने वाली पीढी को कुछ देने जैसा देकर जाऊँगा।'

गतांक से आगे

क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति : दुर्गादास राठौड़

– रेवंतसिंह पाटोदा

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अठारहवें अध्याय के तैयांलीसवें श्लोक में क्षत्रिय के गुणों का वर्णन करते हुए बताया कि शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध से पलायन न करना, दानशीलता एवं ईश्वरीय भाव क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण हैं। दुर्गादासजी इन गुणों की प्रतिमूर्ति थे। विगत दो अंकों में हमने उनके शौर्य व तेज गुणों का विवेचन पढा। इस अंक में प्रस्तुत है तृतीय गुण धैर्य और दुर्गादास जी के जीवन का विवेचन।

बड़े से बड़े संकट उपस्थित हो जाने पर भी, पुत्रादि के मरने पर भी, सर्वस्व नाश होने पर भी व्याकुल न होना, कर्तव्य पालन से विचलित न होना और कर्तव्य पालन में संलग्न रहना ही धैर्य कहलाता है।

इस परिभाषा को देखें तो हर परिस्थिति में विचलित हुए बिना कर्तव्य पालन ही धैर्य है। दुर्गादासजी का जीवन देखें तो पूरा जीवन ही धैर्य का पर्याय लगता है। प्राय: यह कहा जाता है कि उन्होंने 30 वर्ष तक संघर्ष किया, लेकिन उनके जीवन को देखें तो वे 20 वर्ष की उम्र में महाराजा जसवंतसिंहजी की सेवा में आए और 80 वर्ष की वय तक जीवन पर्यन्त संघर्षरत रहे। यह 60 वर्ष का संघर्ष क्या धैर्य के अभाव में संभव हो सकता था?

उनके दक्षिण प्रवास के दौरान 23 मार्च, 1687 को अजीतसिंहजी को प्रकट कर दिया गया, यह उनकी मर्जी के खिलाफ हुआ जो उन्हें अच्छा नहीं लगा, परन्तु धैर्यपूर्वक संघर्ष जारी रखा। यह अजीतसिंहजी की जल्दबाजी थी कि जिसके कारण उनको अजीतसिंहजी के लिये जोधपुर से कम के लिये समझौता करना पड़ा अन्यथा वे तो जोधपुर की ही शर्त के लिये जीवन भर संघर्ष की तैयारी किए हुए थे। योजना को इस जल्दबाजी से धक्का लगा पर धैर्य नहीं छोड़ा।

हर प्रकार के प्रलोभन एवं भय को नकार कर हर कठिनाई को सहर्ष स्वीकार करते हुए संघर्ष एक धैर्यवान व्यक्ति ही कर सकता है। पालनपुर के युद्ध में (1705 में) उनका पौत्र अनूपसिंह काम आया और पुत्र घायल हुआ लेकिन यह सब उनको अपना दायित्व निभाने में विचलित नहीं कर सका। हमारे इतिहास में आवेश में आकर कृत्य करने के उदाहरण तो बहुत मिल जाएंगे लेकिन अपने ही द्वारा अर्जित राज्य को भी बणजारे की तरह बिना किसी प्रतिक्रिया के छोड़कर चले जाने के उदाहरण बिरले ही मिलते हैं क्योंकि इसके लिये आवेश नहीं धैर्य चाहिए। दक्षिण में अकबर के साथ प्रवास के दौरान शंभाजी के उपेक्षापूर्ण व्यवहार को सहन करके भी अपने लक्ष्य के लिये अकबर को दक्षिण में बनाए रखना धैर्य के अभाव में संभव नहीं।

जसवंतसिंहजी के देहान्त के बाद अटक में नदी पार करने हेतु कई दिनों तक शाही अनुमति की धैर्यपूर्वक प्रतिज्ञा करनी पड़ी। दिल्ली राड़ से पहले और औरंगजेब की चालों को धैर्यपूर्वक समझना एवं दुश्मन के जबड़े में से उसके शिकार बालक अजीतसिंह को निकाल कर लाना क्या धैर्य के अभाव में संभव था? अजीतसिंह अपने छोटे से कष्टपूर्ण जीवन से उकता गए और समझौता करने के लिये उतावले हो गए। वे ही क्यों, अन्य कोई सामान्य व्यक्ति भी ऐसा ही करता लेकिन दुर्गादासजी जैसे धैर्यवान पुरुष तो विरले ही होते हैं जो अपने लक्ष्य के लिये जंगलों में भटकना, परिवारजनों का बलिदान होना, घोड़े की पीठ पर ही रातें गुजारना, हर समय हमले की आशंका के बीच जागृत रहना स्वीकार कर लेते और मारवाड़ जैसी रियासत के प्रलोभन को भी ठुकरा देते हैं।

इस प्रकार 1658 में जसवंतसिंहजी की सेवा में आने से लेकर 1678 में उनके देहान्त से लेकर 1698 में औरंगजेब से समझौते तक, 1698 से लेकर 1708 में

सांभर युद्ध में अजीतसिंहजी की प्रतिष्ठा एक शक्तिशाली शासक के रूप में स्थापित होने तक एवं उसके बाद निर्वासन स्वीकार कर नवम्बर 1718 में देहावसान तक के काल में कोई भी क्षण ऐसा नहीं आया जब ऐसा संदेश निकला हो कि दुर्गाबाबा ने कभी अपना धैर्य खोया है। यहाँ तक कि अजीतसिंह ने अपने अस्थिर स्वभाव एवं हीन भावना के कारण संघर्षकाल में दुर्गादासजी के सहयोगी रहे लोगों के साथ दुर्व्यवहार किया। यहाँ तक कि उनके सहयोगी रहे मुकंददास व उनके भाई रघुनाथसिंह की हत्या करवा दी गई लेकिन ऐसी विकट परिस्थिति में भी दुर्गादासजी ने अपना धैर्य नहीं छोड़ा और अपने ही बनाये जोधपुर को अंतर्कलह से बचाने हेतु निर्वासन स्वीकार कर लिया। ऐसे थे हमारे धैर्यशील दुर्गाबाबा। *(क्रमशः)*

मायड़ रौ हेलौ

– मदनसिंह सोलंकिया तला

सगळा हेलौ सांभळौ, आखौ राजस्थान।
गाँव गळी गूंजाय दो, मायड़ देवण मान।।

रूपाळी रजथांन री, जनभासा नै जांण।
मायड़ नै भूलो मती, ओळख राखौ आंण।।

मुधरी मायड़ मोवणी, मुलकां मांय मसूर।
बिलखै भासा बापड़ी, कीधौ कांई कसूर।।

मायड़ मांगे मांनता, सुणो हेलौ सपूत।
कळजुग म्हांनै कैवसी, बिन माता रा पूत।।

भासा मनड़ै भावती, आ सगळां री आन।
जोवां मूंडौ राज रौ, कद मिळसी सम्मान।।

बरस इकोतर बीतिया, आजादी नै आज।
कंई कसूर मायड़ रौ, क्यूं रूळावै राज।।

डिंगळ री डकरेल आ, रूड़ौ पिंगळ रूप।
सबदकोस है सांवठौ, भासा साहित भूप।।

व्यापक जिणरी व्याकरण, आदी रूप अनूप।
पोथी पोथी पेखलौ, राजस्थानी रूप।।

दीसै भारत देस री, चहुकूंटा में शान।
ऊभी बिलखै आंगणै, मायड़ मांगे मान।।

सुणै न कोई सांभळै, अंतस री आवाज।
गूंगी बैठी गूंगटै, आदर देवौ आज।।

सुणले हेलौ सांवरा, हिंवड़ै हालै हूक।
जड़ियौ ताळौ जीभ रै, मूंडै गिटणौ थूक।।

पातळ पीथळ ईसरौ, करता जिणमें बात।
उणनै देवौ मानता, मीरा री आ मात।।

पाबू री पड़ पेखलौ, तेजै वाळी टेर।
उण भासा नै मानता, देवण मत कर देर।।

बरसां री कद बीतसी, रजथानी री रात।
आंगण दिनड़ौ ऊगसी, करसां मन री बात।।

गांम गांम में गूंजगी, भासा री भणकार।
मायड़ मांगै मांनता, कद देसी सरकार।।

मुलक मांय मोटी धरा, रंगभीनी रजथांन।
सिरियंद भासा सांवठी, साहित हन्दी शान।।

मायड़ हेलौ सांभळौ, भूलो मती भळांण।
ओळख राखौ आपरी, जुग जुग रहसी जांण।।

साहित मायड़ सांतरौ, अंजसतौ इतिहास।
मोदी दीजै मांनता, आ है थांसू आस।।

जूना आखर जोयलो, भरिया भल भंडार।
मोदी वैगो मानजा, धुन मायड़ री धार।।

मायड़ मांगै मांनता, मायड़ नै दो मान।
मायड़ भासा रे बिना, सूनौ राजस्थान।।

करसा टाबर कांमणी, जागो कवी जवान।
सूता मत रौ साथियां, मायड़ देवण मान।।

*

वालेरा वाला

– स्वामी सच्चिदानन्द जी

राजपूतों की कहानियाँ भी राजपूत जैसी ही होती हैं। ***शौर्य के साथ अन्य कोई लोकोत्तर गुण जुड़े हुए होते हैं। एक-एक गुण को लेकर एक-एक अमर कथा प्रकट हो सकती है। जिस तरह गुणवती स्त्री पूरे घर को रोशन कर देती है, उसी तरह गुण-कथाएँ भी पूरे जीवन को रोशन कर देती हैं।***

दुर्गुणों की कोई कथा नहीं होती। और यदि हो तो वह बदबू फैलाती है। लोग नाक दबाकर दूर भागेंगे।

एक दिन जूनागढ का एक मोची राजपूती जूती बनाकर जेतपुर के काठी ठाकुर वालेरा वाला के दरबार में पहुँचा। भारत में कला-कारीगरी करने वाले उसकी कदर करने वालों को ढूंढ़ते फिरते हैं। किसी को मिलते हैं, किसी को नहीं मिलते। पूरा जीवन कदर विहीनों के बीच निसांस लेता रहता है। कदरदान मिल जाए यह भी सौभाग्य माना जाता है। पश्चिम के देशों में कला-कारीगर पेटेण्ट ले लेते हैं और घर बैठे रुपयों के ढेर कर लेते हैं। वहाँ कदरदान की खोज में घर-घर भटकना नहीं पड़ता।

मोची की जूती देखकर वालेरा बोले,-'बोल! कितने में देगा?' समझदार कारीगर बड़े लोगों के आगे मूल्य नहीं बोलते।

'बापू! जो आप चाहो, दे दो।' कारीगर जानता था कि बापू मूल्य से ज्यादा ही देंगे।

'नहीं नहीं। माल तेरा है, मूल्य भी तुम ही बोलो।' ठाकुर वालेरा ने आग्रह किया। उनको जूती भा गई थी।

'तो बापू! बच्चों को दूध पिलाने के लिये एक गाय चाहिए। एक अच्छी गाय दे दीजिए।' उन दिनों में सुखी घर का प्रथम लक्षण दूध देता पशु माना जाता था। उस समय डेयरी नहीं थी। घर में दूध देती गाय या भैंस हो तो बच्चे दूध पीएं। बाकी के माँग कर लाई गई छाछ से काम चला लें।

ठाकुर ने अपने पूरे गोधन में से जो गाय पसन्द हो, उसको ले जाने के लिये वचन दिया। उदारता का वादा नहीं होता। वादा तो व्यापार का होता है और ऐसे व्यापारिक वादों की कहानियाँ नहीं बनती।

ठाकुर वालेरा ने मनचाही गाय देने को कह दिया, इस खुशी में मोची शाम तक गाँव की सीमा पर बैठा रहा। शाम होते ही चरवाहा गायों को लेकर लौटा तो उस गोधन में से सबसे अच्छी गाय मोची ने चुन ली।

राजपूत और बनियों में इतना फर्क होता है, राजपूत सबसे अच्छी गाय देगा। चतुर बनिया सोचकर निकम्मी, बिना दूध देने वाली गाय देगा। आवश्यकता से अधिक चतुराई व्यक्ति को रक्षित तो बनाएगी, पर उदार बनने में बाधा भी डालेगी।

चरवाहा को पता लगा कि सबसे अच्छी और अपनी प्यारी गाय मोची ले जा रहा है तो वह क्रोधित हो गया। उसने ठान लिया कि किसी भी कीमत पर मैं यह गाय ले जाने नहीं दूंगा। बात वालेरा के पास आई। उसने चरवाहा को समझाया-'मैंने वचन दिया है, इसलिए मेरे वचन की खातिर यह गाय दे दो।' मगर चरवाहा माना ही नहीं। वह क्रोध में ही नौकरी छोड़कर चलता हुआ। ***नौकर-सेवक यदि आज्ञाकारी न हो, सामने बोलने वाला या दी गई आज्ञा का उल्लंघन करने वाला हो तो मालिक स्वमान बचा नहीं सकता। अपमानित होता रहता है। घर में ही अपमानित होना महा पीड़ादायक हो जाता है। पत्नी, पुत्र, परिवार व नौकरादि सामने बोलने वाले हों तो कुबेर की सम्पत्ति वाला घर भी सुखद नहीं होता। सर्वोच्च सुख लोगों से मिलता है। यदि लोग वफादार, समझदार व आज्ञाकारी मिलें तो दारिद्रय में भी मानव सुखी होगा।***

चरवाहा तो चलता हुआ। अब गायों को कौन दुहे? बिना दुहे गाएँ रंभाने लगी। ***नौकर-सेवकों के आधीन होकर सुख-साहबी भोगने वाले कभी-कभी नौकरों की अनचींती हड़ताल से भारी तकलीफ में आ जाते हैं।*** बिना सेवकों का स्वावलम्बी जीवन सदा सुखद होगा। ***पर साहबी नौकर-सेवकों के बिना शोभा नहीं पाती। कुछ दुख शोभा बढाने के भी होते हैं।***

सारी रात गायें बिना दुहे रह गई। अब वालेरा आपे से बाहर हो गये। उन्होंने दो मकरानियों को धारियाँ (धारदार हथियार) लेकर गोपालक को बुलाने भेजा। कई बार अंगुली टेढी करने से ही घी निकलता है। शस्त्रधारी मकरानियों को देखकर ही गोपालक तैयार हो गया। ***सब कुछ अहिंसा या सद्‌भाव से ही नहीं होता। थोड़े बहुत काम आँख दिखाने से व हिंसा से भी हो सकते हैं।***

गोपालक आकर टपा-टप गायें दोहने लगा। मगर वह गाय मोची को नहीं देने के लिये अकड़ा ही रहा। ठाकुर फिर से गुस्से में आगए और गाँव के गरीब लोगों को बुला-बुला कर गायें देने लगे। 'ऐसा मिजाजी चरवाहा रखने के बजाय गौशाला ही नहीं रखूंगा।' वालेरा वाला ने ऐसा कठोर निर्णय ले ही लिया। जरूरतमंद लोग एक-एक करके गाय लेकर ठाकुर साहब की जय पुकारते गए।

गोपालक ने देखा कि बाजी हाथ से जा रही है। भूख से मरने के दिन आ जाएंगे। वह दौड़ा और वालेरा के पाँव पकड़कर रोते हुए बोला,-'बापू क्षमा कर दें। अब आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूंगा। वालेरा ने बची हुई गायों को रोक लिया। गौशाला चालू रही। ***ठीक प्रकार आज्ञापालन करवाना हो तो कभी-कभी कठोर निर्णय लेना ही पड़ता है।***

राजपूतों को सबसे अधिक शौक शस्त्र व घोड़े रखने का होता है। जीवन आवश्यकता अलग बात है और मौज-शौक अलग बात है। ***संसार आवश्यकता के लिये जितना खर्च करता है, समय देता है, परिश्रम करता है उससे कई गुना मौज-शौक के लिये करता है।*** श्रीमन्तों के शौक व गरीबों के व्यसन बड़ी कमाई को भी चाट जाते हैं-खत्म कर देते हैं। श्रीमन्तों के शौक शायद आजीविका सृजन करें, पर गरीबों के व्यसन तो बरबादी के सिवाय और कुछ पैदा नहीं करते।

साहबी भुगतने के तीन तरीके होते हैं- 1. चुपके से-किसी को पता भी न चले। 2. अपनी मर्यादाओं को देखकर नम्रतापूर्वक। 3. अपनी मर्यादाओं से परे होकर लोगों की नजरों में आये, खुद अहंकार बनकर। यह तीसरा तरीका बहुत बुरे अंजाम लाता है। लोगों की नजर में आना और वह भी बलवान लोगों की नजरों में और अहंकार करना यह साहबी भुगतने का नादानी भरा तरीका है।

वालेरा ठाकुर को घोड़े का बहुत शौक था। उन्होंने 'मारुया'। नामक एक घोड़ा पाल रखा था। देखते ही मन मोहित हो जाय, ऐसा बहुत ही सुन्दर, पंच कल्याणी था वह घोड़ा। वालेरा सुबह-शाम घोड़ा लेकर निकलते, घोड़े के करतब दिखाते। घोड़ा भाँति-भाँति के खेल दिखलाता। लोग खुश-खुश हो जाते। मारुया का यश देखते ही देखते बड़ौदा के महाराजा के पास पहुँचा। ***यश कभी बिना ईर्षा ही नहीं होता। अत: संत कभी भी स्व यश नहीं गाते, फैलाते। वरन सामने जाकर स्व निन्दा फैलाने के यत्न करते रहते हैं। स्व निन्दा से शत्रु कम हो जाएंगे, स्व यश से शत्रु बढ जाते हैं।***

बड़ौदा के महाराजा ने राजकोट के अंग्रेज अफसर लौंग साहब से कहलवाया-'कुछ भी करें, चाहे जितना पैसा देकर भी वालेरा का घोड़ा मुझे दिलवा दो। वक्त था, जब भारत में अंग्रेज हुकूमत का दबदबा था। लौंग साहब जमीन नपाई के लिये पूरे काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में प्रसिद्ध थे। उन्होंने घोड़ा लेकर वालेरा को मिलने के लिये बुलाया। बड़ौदा के महाराजा की इच्छा बताई, घोड़ा दे देने का आग्रह किया। पाँच हजार के घोड़े का लौंग ने पैंतीस हजार देने का कहा। मगर वालेरा माने नहीं। दोनों पक्ष हठ पर आ गए। 'चाहे कुछ भी हो मारुया पर गायकवाड़ नहीं बैठ सकते।'

'तो कौन बैठ सकता है?' लौंग ने तड़क कर पूछा। उतनी ही दृढता से वालेरा ने कहा,-'या तो मैं बैठूंगा या मेरे चारण।' बराबर ही खोड़ा भाई चारण बैठे थे। उनकी ओर देखकर वालेरा ने कहा,-'कविराज! आज मैं यह घोड़ा आपको भेंट में देता हूँ।' उपस्थित सभी दिग्मूढ रह गये। पैंतीस हजार को लात मारकर वालेरा ने घोड़ा दान में दे दिया।

गढवी चारण की सरस्वती खिल उठी व तुरन्त वालेरा और मारुया का लम्बा प्रशस्ति गान बनाकर गाया। लौंग व बिरादरी के लोग देखते ही रह गए और चारण घोड़े पर चढकर चल दिया। ऐसे थे वालेरा वाला ठाकुर।

मेड़ताधीश वीरवर राव जयमल मेड़तिया : जीवनवृत्त

– डॉ. शक्तिसिंह 'खाखड़की'

तेहरवीं सदी में राठौड़ों के एक दल ने राव सीहाजी के नेतृत्व में कन्नोज से पुष्कर होते हुए मारवाड़ में प्रवेश किया। राव सीहा मारवाड़ में राठौड़ राज्य के संस्थापक थे।

सीहाजी के पन्द्रहवें वंशज राव जोधाजी हुये जिन्होंने न केवल अपने राज्य को स्थायित्व प्रदान किया बल्कि अपने भाईयों और बेटों को जागीरें दी। उनके ज्येष्ठ पुत्र बीकाजी ने अपने काका काँधलजी की मदद से जांगलु प्रदेश में एक नवीन राज्य बीकानेर की स्थापना की तथा दूदाजी ने मालवा के सुलतान महमूद खिलजी के अधीन आये मेड़ता को जीतकर पुन: अपने तरीके से बसाया, अपने ईष्ट देव चार भुजानाथ का मंदिर बनवाया तथा दूदासागर तालाब खुदवाया। दूदाजी के वंशज मेड़ता में रहने के कारण मेड़तिया कहलाये।

राजस्थान के अति प्राचीन नगरों में मेड़ता एक है, जिसको 5वीं शताब्दी में राजा मानदाता पंवार ने बसाया इसलिये संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में इसका नाम मानदातापुरी मिलता है।

मेड़ता के शासक व मेड़तिया वंश के निर्माता राव दूदा महान शूरवीर, बुद्धिमान तथा अपने भाईयों से प्रेम करने वाले शासक थे। उन्होंने अनेक युद्धों में जोधपुर तथा बीकानेर के शासकों की मदद भी की। वे भगवान चारभुजानाथ के महान भक्त थे तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे, जिसकी एक पीठ अजमेर के सलेमाबाद में स्थित है। दूदाजी की भक्ति के संस्कार उनके पौत्र वीरवर जयमल व पौत्री मीराबाई पर पड़े, जिससे ये दोनों ही महान भक्त हुये। 1515 ई. में दूदाजी देवलोक हुये, उनके पाँच पुत्र थे जिनमें ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेवजी उनकी गद्दी बैठे। कविराजा बांकीदास की ख्यात के अनुसार वीरमदेवजी 'राजा' की पदवी लगाते थे तथा अपने पिता की तरह ही पराक्रमी तथा शूरवीर प्रजाप्रिय शासक थे। राव दूदाजी तक मेड़ता के सम्बन्ध जोधपुर वालों के साथ मधुर रहे। परन्तु वीरम के समय जोधपुर के विस्तारवादी शासक मालदेव के साथ अनेक युद्ध हुये, जिससे शेरशाह सूरी को फायदा हुआ तथा मालदेव को मुँह की खानी पड़ी। राव वीरम का चित्तौड़ के सिसोदिया शासकों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार रहा। उन्होंने अपने लघु भ्राता रतनसिंह की पुत्री मीराबाई का विवाह चित्तौड़ के शासक महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र युवराज भोजराज के साथ किया। राणा सांगा के सबसे विश्वस्त साथियों में मेड़ता के शासक रहे, जो उनके प्रत्येक युद्ध अभियान में उनके साथ रहे। जिस प्रकार के सम्बन्ध मेड़तिया राठौड़ों के मेवाड़ के सिसोदियों के साथ थे, उस तरह के अगर जोधपुर के शासकों के साथ होते तो शायद राठौड़ों का शासन दिल्ली पर होता और मारवाड़ का इतिहास कुछ और ही होता। राव वीरमदेवजी के दस पुत्र हुये, जिनमें उनके द्वितीय पुत्र जयमल उनके उत्तराधिकारी हुए।

जैमलजी मेड़तिया री जन्मकुंडली

सम्वत् 1564 आसोज सुद 11 (सितम्बर 17, 1507)

वीरमदेव सुत जैमलजी मेड़तिया रौ जन्म

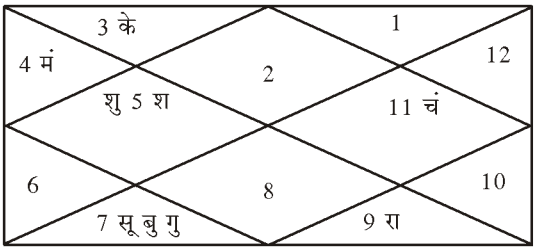

वीरों में श्रेष्ठ, भक्तों में अग्रगण्य, स्वामिभक्त, राठौड़ों के गौरव मेड़तिया जयमलजी का जन्म वि.सं. 1564 आश्विन शुक्ला 11 शुक्रवार को हुआ। जयमलजी वि.सं. 1600 में अपने पिता वीरमदेव के स्वर्गवास होने के पश्चात् मेड़ता की राजगद्दी पर विराजमान हुए। मेड़तियों में वैसे तो सभी वीर ही हुए थे परन्तु जयमल उन सभी में महावीर और प्रतापशाली शासक थे। अपने पिता के

समय कई युद्धों में उनके साथ रहने के कारण उनमें बड़ी-बड़ी फौजों से टक्कर लेने की समझ थी। अकेले जोधपुर के मालदेव से ही उन्होंने 22 लड़ाइयाँ लड़ीं और वे मेड़तियों में श्रेष्ठ रणबंका बन गए।

मालदेव ने वि.सं. 1610 में मेड़ता पर हमला किया परन्तु जयमलजी की भगवान चारभुजानाथ की भक्ति के कारण मालदेव को मुँह की खानी पड़ी। वि.सं. 1613 में मेवात के हाजी खाँ व महाराणा उदयसिंह के बीच युद्ध हुआ। उस युद्ध में हाजीखाँ को मालदेव ने मदद दी क्योंकि वह निर्बल था और मालदेव इस बहाने अजमेर हथियाना चाहता था। हरमाड़ा के इस युद्ध में जयमल महाराणा की ओर से हाजीखाँ से लड़े। जयमल को इस युद्ध में उलझा हुआ देखकर मालदेव को मौका मिला और उसने चुपके से मेड़ता पर कब्जा कर लिया। एक बार मेड़ता पर कब्जा करने के बाद उसने अपने मन की इच्छा पूरी करते हुए वहाँ के गढ़, महलों, शहरपनाह इत्यादि को तुड़वाकर वहाँ मूलों की खेती करवाई। इधर जयमलजी के साथ इतना सब कुछ हो गया परन्तु उन्होंने साहस के साथ काम लेते हुए मेड़तिया राठौड़ों के अपने दल के साथ कुलदेवी नागणेचीयांजी के दर्शन करके मेवाड़ की ओर प्रस्थान किया। वहाँ महाराणा उदयसिंहजी ने मेवाड़-मेड़ता के पिछले सम्बन्धों को याद कर उन्हें बदनौर की जागीर दी। अपने पितामह दूदाजी की कर्मस्थली व अपनी जन्मस्थली मेड़ता को जयमल भूल नहीं सके। वैसे भी मेड़ता की धरती और बदनौर की भूमि में जमीन-आसमान का फर्क था परन्तु महाराणा मालदेव से लड़ने में असमर्थ थे। अनेक युद्धों के तजुर्बे से जयमल ने यह निष्कर्ष निकाला कि जब तक कोई बलवान साथी नहीं मिल जाता तब तक मेड़ता नहीं मिल सकता। उनको मालूम हुआ कि अकबर अजमेर आया हुआ है अत: जयमल अकबर से जाकर मिले। अकबर खुद मालदेव पर नाराज था क्योंकि मालदेव ने हुमायूँ के साथ धोखा किया था। अकबर खुद राजपूताने में अपना सिक्का जमाने के लिये मालदेव से युद्ध करना चाहता था। जयमल ने आग में घी डालने का काम किया। अकबर ने सरफुद्दीन हुसैन मिर्जा को भारी फौज देकर जयमल की मदद के लिए भेजा। मुगलों और जयमल की फौज ने वि.सं. 1619 में पुन: मेड़ता जीत लिया। कुछ महीनों के पश्चात् ही मालदेव का स्वर्गवास हो गया। इसके साथ ही मेड़ता-मारवाड़ का हमेशा का वैर समाप्त हो गया।

जयमल मेड़ता में अपना शासन चला रहे थे कि एक ऐसी घटना घटी जिससे पुन: जयमल को हमेशा के लिए मेड़ता खोना पड़ा। अकबर के सेनापति सरफुद्दीन और जयमल के राजकुमार विट्ठलदास के बीच अत्यधिक मित्रता थी। इसी बीच अकबर से सरफुद्दीन बागी हो गया। अकबर की फौज उसका पीछा कर रही थी कि इस विपत्ति में उसको जयमल की याद आई। उन्होंने जयमल से मदद माँगी। उन्होंने विपत्ति में फँसे हुए सरफुद्दीन को बादशाह अकबर से दुश्मनी मोल लेते हुए 'शरणागतरक्षक बनकर' शरण दी। और तो और नागौर गढ़ में कैद सरफुद्दीन के परिवार को निकाल लाने के लिये जयमल ने अपने पुत्र राजकुमार शार्दूल को सेना सहित भेजा। शार्दूल ने मिर्जा के परिवार को वहाँ से निकाल दिया और मेड़ता के लिये रवाना किया। परन्तु वहाँ युद्ध हुआ जिसमें शार्दूल अपने सैनिकों सहित काम आया। इस प्रकार जयमल ने शरणागत की रक्षा करते हुए सरफुद्दीन के पुत्रों को बचाने के लिये अपने पुत्र का बलिदान दे दिया।

सरफुद्दीन को शरण देने की खबर बादशाह अकबर के पास पहुँची। बादशाह ने नाराज होते हुए मुगल सेनापति हुसैन कुल्लीखाँ के नेतृत्व में एक फौज मेड़ता पर भेजी। जयमल जी ने समझदारी से काम लेते हुए सोचा कि यहाँ व्यर्थ में सैनिक मरवाने से कोई फायदा नहीं है। पिछले युद्धों में अपनी फौजों से दस गुना बड़ी फौजों से लड़कर मेड़तियों ने 'रण में दूदा' का खिताब तो पा लिया परन्तु कई घर उजड़ गये। इस प्रकार हुसैन कुल्लीखाँ के फौज लेकर मेड़ता पहुँचने पर जयमल उसको मेड़ता सौंपकर परिवार सहित वहाँ से निकल गए। इसके पश्चात् वे मेड़ता में वापिस कभी नहीं आए।

मेड़ता को शाही अधिकारी के सुपुर्द कर जयमल ने अपने परिवार को बदनौर पहुँचा दिया। उनकी इच्दा थी कि वे अकबर से मिलकर उसे सच्चाई से अवगत कराएँ। इसी बीच महाराणा उदयसिंह ने जयमल को चित्तौड़ आने का निमंत्रण भेजा क्योंकि उनको खबर मिली थी कि अकबर चित्तौड़-विजय के मनसूबे बना रहा है। जयमल जी के पास दो विकल्प थे। एक तो यह कि अकबर को खुश करके मेड़ता प्राप्त करना और दूसरा यह कि अकबर को नाराज करके महाराणा की मदद के लिये चित्तौड़ जाना। दोनों मतों पर विचार करने के बाद जयमल को मेड़ता से ज्यादा चित्तौड़ की रक्षा का कार्य उचित लगा। वह इसलिए भी कि उन्होंने अपने पिता के सामने प्रतिज्ञा की थी। ठा. उम्मेदसिंह जी धोली के ऐतिहासिक संग्रह के अनुसार महाराणा सांगा के स्नेह व मित्रतापूर्ण व्यवहार तथा क्षत्रियोचित गुणों से प्रभावित होकर जयमल के पिता राव वीरम ने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'मेरा सिर चित्तौड़ को अर्पण है।' वीरम महाराणा सांगा के साथ कई युद्ध-अभियानों में गये परन्तु उन्हें काम आने का मौका नहीं मिला। उन्होंने अन्तिम समय में यह इच्छा अपने पुत्रों के समक्ष रखी। उनके पुत्र जयमल ने अपने पिता की इच्छा व प्रतिज्ञा को खुद धारण करते हुए निवेदन किया था, 'आप नि:संकोच स्वर्ग पधारें। आपके सिर के स्थान पर जयमल का सिर चित्तौड़ को अर्पण होगा।' इस प्रकार वह प्रतिज्ञा स्मरण होते ही जयमल ने दिल्ली जाने की बजाय चित्तौड़ का रास्ता पकड़ा। 'जयमल वंश प्रकाश ग्रंथ' के मुताबिक 'जब जयमल चित्तौड़ जा रहे थे तो मार्ग में गंगरार के पहाड़ों में उनको भीलों के एक दल ने दुश्मन समझकर रोक लिया। ठा. उम्मेदसिंहजी धोली कहते हैं-उस इलाके में तो भीलों का नामोनिशान ही नहीं है। उस समय जयमल के बहनोई पत्ताजी सिसोदिया भी उनके साथ थे। भीलों की यह हरकत जयमल-पत्ता को नागवार गुजरी। अत: पत्ता ने जयमल से पूछा 'अठै क उठै'। जयमल ने इशारे से ही बताया कि 'उठै'। इनके ओजस्वी चेहरे और बातचीत का लहजा देखकर उक्त लोगों ने पूछा, 'श्रीमान्! कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं? आप हमें यह बताएँ कि 'अठै क उठै' का क्या मतलब है?' पत्ता ने बताया कि मैं केलवा का पत्ता चूण्डावत और यह मेड़ता के राजा जयमल मेड़तिया हैं। हम महाराणा की मदद के लिये चित्तौड़ जा रहे हैं। मैंने इनसे पूछा है 'यहाँ मरना है कि नहीं।' तब इन्होंने वापिस मुझे कहा कि 'वहाँ, यानि चित्तौड़ के महाराणा की मदद करते हुए मुगलों से लड़कर मरना उचित रहेगा। यह सुनकर उन लोगों ने माफी माँगी और उनका सरदार मल्लू भी जयमल के साथ रवाना हुआ। यह चित्तौड़ हमले के वक्त मुगलों से लड़ते हुए वहाँ काम आया। उसकी स्मृति में आज भी वहाँ चबूतरा बना हुआ है। इस प्रकार वीर जयमल चित्तौड़ पहुँचे। महाराणा ने उनको बदनौर सहित, करहेड़ा और कोठारिया की 1000 गाँवों की जागीरें प्रदान कीं। वीरवर जयमल के वंशजों के मेवाड़ के 16 उमरावों में 2 बड़े ठिकाने बदनोर तथा घाणेराव रहे हैं।

महाराणा उदयसिंह ने सन् 1559 में उदयपुर नगर बसाया और उससे तीन किलोमीटर दूर उदयसागर तालाब बनवाना शुरू किया जो तीन वर्ष में संपूर्ण हुआ। तालाब की प्रतिष्ठा का समारोह 3 अप्रेल, 1565 के दिन हुआ। इन सब कामों के बाद महाराणा ने उदयपुर में ही रहना शुरू कर दिया। चित्तौड़ किले की सार-संभाल जयमल ही किया करते थे। चित्तौड़ के किले में जहाँ जयमल निवास करते थे, वे आज भी 'जयमल के महल' के नाम से पहचाने जाते हैं तथा एक तालाब का नाम आज भी 'जयमल का तालाब' कहा जाता है। 1567 में जयमल चित्तौड़ के दुर्गाध्यक्ष बना दिये गये।

अकबर द्वारा सेना लेकर चित्तौड़ की ओर आने की खबर जब महाराणा उदयसिंह को लगी तो उन्होंने अपने प्रधान सामन्तों व राजकुमार प्रतापसिंह व शक्तिसिंह के साथ भावी युद्ध के लिये मंत्रणा की। सभी ने तय किया की गुजरात के सुल्तान के साथ लड़ते-लड़ते मेवाड़ बहुत कमजोर हो गया है तथा बादशाह अकबर बहुत विशाल फौज व तोपखाने सहित आ रहा है, अत: ऐसे

विकट समय में हमारी विजय की शंका है। अत: महाराणा राजपरिवार सहित पहाड़ों के सुरक्षित स्थानों पर चले जाएँ। इस बात का युवराज प्रताप ने प्रबल विरोध किया और कहा, ''हमारी जन्मभूमि चित्तौड़ की रक्षा के लिये हमारे सामन्त तो मरें और हम राजा होकर प्राण बचाएँ, यह हमें शोभा नहीं देता। यह तो गौरवशाली सिसोदिया वंश के कायरता का कलंक लगाना है।'' प्रताप की ओजस्वी वाणी से सभा में सन्नाटा छा गया और महाराणा मौन हो गए। तब वीराग्रणी जयमल बोले जो युवराज प्रताप के गुरु थे प्रताप को सैनिक शिक्षा राठौड़ जयमल ने दी थी। इस बात का उल्लेख सतीशचन्द्र मित्र, प्रोफेसर ऑफ हिस्ट्री, हिन्दू एकेडमी दौलतपुर (बंगाल) ने अपनी पुस्तक 'प्रताप का जीवन चरित्र' में किया है। 'प्रताप चरित्र' काव्य के रचियता बारहठ केसरीसिंहजी ने भी 'प्रताप चरित्र' में जयमल को प्रताप का 'शस्त्रगुरु' माना है। जयमल राठौड़ ने दूरदर्शिता भरे वचन कहे-''युवराज! चित्तौड़ की स्वतंत्रता या सिसोदिया वंश की गौरवगरिमा का ही यह प्रश्न नहीं है अपितु आज प्रश्न है हिन्दू धर्म व हिन्दू संस्कृति की रक्षा का। राजकुमार प्रताप! मुझे दिखलाई दे रहा है कि हिन्दू धर्म पर महान विपत्ति आने वाली है और उसी दिन के इंतजार में आपको जिन्दा रहना है। मेरा निवेदन है कि इस सर्वसम्मत आज्ञा का आप विरोध न करें।'' युवराज चुप हो गए। महाराणा उदयसिंह ने राठौड़ जयमल को सेनाध्यक्ष का पद देकर अपने हाथ से उनके भाल पर तिलक लगाया और उनकी कमर पर कठोर कृपाण बाँधी। तत्पश्चात् पूरे राजपरिवार को साथ लेकर रावत नेतसी के साथ महाराणा पहाड़ों के दुर्गम स्थानों पर चले गये। जयमल की इसी दूरदर्शिता के कारण प्रताप 'हिन्दुवासूर्य' कहलाए और उन्होंने हमारे सिर पर चोटी व गले में जनेऊ कायम रखी।

बादशाह अकबर माण्डलगढ़ से कूच कर वि.सं. 1624 मार्गशीर्ष कृष्ण, गुरुवार को चित्तौड़ आ पहुँचा और उसने दुर्ग से थोड़ी दूर नगरी नामक गाँव में अपना पड़ाव डाला। अकबर का इस युद्ध के पीछे एक ही कारण था कि भारत के सब राजा या तो अकबर के अधीन हो गये थे या संधि कर मित्र बन गये थे। परन्तु एक मेवाड़ का महाराणा ही बाकी बचा था जिसने अकबर को भारत का बादशाह नहीं माना था। चित्तौड़ विजय के लिये अकबर जो सेना लेकर आया था, वह इतनी विशाल थी कि चित्तौड़ तो क्या, वह विश्व को जीत सकता था। भारत के धन के लोभी राजा व उन राजाओं की राजपूत सेना तो उसके साथ थी ही, इसके अलावा भारत देश के बाहर के देशों की युद्धविशारद फौजें भी उसके पास थी। हजारों नामी विदेशी लडाकू सैनिक व सैकड़ों सिपहसालार उसकी सेना में थे। कविराज बांकीदासजी (जोधपुर) ने अपने 'भुरजाळ भूषण' काव्य में अकबर की फौज में किस-किस देश के वीर सैनिक थे, इसका सटीक वर्णन किया है -

कै मुलतान काबुल, पेशावरी प्रचंड।
नेसापुर रा नीपन्या, बगदादी बळबंड।।
श्यामी रूमी संजरी, गौरी कासगरीह।
ईरानी यवनी अडर, सीराजी रणसीह।।
बलखी हिलकी बाबरी, रूसी तूसी रोद।
अे ले अकबर आवियो, (अठै) सझ ऊभा सीसोद।।

इस प्रकार की महान! बलशाली सेना के सामने मुट्ठी भर मेवाड़ी सैनिकों को लेकर चार महीने तक जूझना जयमल की युद्ध विशारद रणनीति व उनका सफल सैन्य-संचालन ही कहा जाएगा। उस समय साबात के सहारे सुरंगें बनवाने में बादशाह की दौलत पानी की तरह बहाई गई थी। मिट्टी व सोने का एक मोल हो गया था। लेकिन इस प्रकार खर्च करके बनवाई हुई सुरंगों को दागा गया जिसके कारण अकबर का दुर्ग को जीतने का सपना असत्य सिद्ध हो गया। यवन सेना को कोई सफलता नहीं मिली। जयमल ने दुर्ग की दूसरी दिवार बनवा ली थी। अकबर का दिल पलट गया और उसने स्वार्थ का पासा फैंकने के लिये राजा टोडरमल को दुर्ग के अन्दर जयमल के पास भेजा।

टोडरमल ने बादशाह अकबर का संदेश देते हुए

जयमल से कहा ''तुम राठौड़ हो, स्वतंत्र राजा हो। चित्तौड़ सिसोदियों का है, तुम्हारा यहाँ क्या है? बादशाह का हुक्म मानकर दुर्ग से नीचे उतर आओ तो मैं तुम्हें मेड़ता तथा नागौर का राज्य, अजमेर की सूबेदारी तथा मनसबदारी प्रदान कर दूंगा।'' यह सुनते ही जयमल आग-बबूला हो गया। सिंह के समान गर्जना करता हुआ वह बोला-

है गढ़ म्हारो म्हैं धणी, असुर फिरै किमआंण।
कूंच्याँ जै चित्रकोट री, दीधी मोहे दिवांण।।
जयमल कहै जवाब यूँ, सुणले अकबर साह।
आँण फिरै गढ़ ऊपरां, पड़ियां धड़ पतसाह।।

मुँह लटकाये हुए टोडरमल ने आकर सब हालात कहे। अकबर ने मन ही मन क्षत्रियों के त्याग व बलिदान की प्रशंसा करते हुए राठौड़ वीर जयमल को नमन किया। उसके महान् त्याग की छाप सदा के लिए बादशाह के हृदयपटल पर छप गई। काश! यही त्याग और कर्त्तव्यपरायणता हमारे आज के राष्ट्राध्यक्षों, राजनेताओं व राज्याधिकारियों के मन में होती।

वि.सं. 1624 की चैत्र कृष्णा 11 सोमवार को रात्रि में मशालों के प्रकाश में दुर्ग की निगरानी करते हुए राठौड़ वीर जयमल को बादशाह अकबर की गोली लगी। उनकी दोनों जंघायें टूट गई। दुर्ग में रसद सामग्री भी कम हो गई थी। मरते-मरते सैनिक भी थोड़े ही रह गये। इन सब परिस्थितियों को देखकर वीरवर जयमल ने प्रात:काल अन्तिम युद्ध करने का निश्चय कर जौहर की आज्ञा दे दी। दुर्ग में चार स्थानों पर जौहर की चिताएँ जली जिसमें क्षत्राणियों ने हँसते-हँसते अपना कोमल देह अग्निदेव को समर्पित कर दिया।

प्रात:काल क्षत्रिय वीरों ने केसरिया बाना धारण किया। उन्होंने बड़े हर्ष के साथ आपस में अफीम (कसूम्बा) पीया और सूर्यदेव की प्रथम किरण के साथ गढ के दरवाजे खोलकर क्षत्रिय वीर भूखे बाघों की तरह अरिदल पर टूट पड़े। राजपूतों के भयंकर हमले से अकबर घबरा गया और उसने चार सौ हाथी क्षत्रिय वीरों को कुचलने के लिये छोड़े। रावत फत्ता और जयमल के अनुज राठौड़ ईसरदास ने हाथियों के साथ भयानक युद्ध किया। वीर क्षत्रियों के प्रहार से हाथी भी घबरा गये और कई हाथी तो मुगल सेना को रौंदते हुए वापस भागे। घायल अवस्था में भी, जंघाओं के टूटने पर भी युद्धप्रेमी प्रतिज्ञापालक राठौड़ वीर जयमल ने अपने बंधु कल्ला के कंधों पर बैठकर दोनों हाथों से तलवार चलाते हुए युद्ध का आनन्द लिया। कुछ लोगों ने तो यह देखकर ऐसा अनुमान लगाया कि जयमल के इष्टदेव चारभुजानाथ तो कहीं युद्ध करने नहीं आ गये हैं, कारण यह रहा कि दोनों हाथों से जयमल और दोनों हाथों से कल्ला की तलवारें चल रही थीं। इस प्रकार लौमहर्षक युद्ध कर शत्रुओं का संहार करते हुए हनुमानपोल और भैरवपोल के मध्य राठौड़ वीर जयमल ने वीरगति प्राप्त की जहाँ पर आज भी उनकी दसस्तम्भों की छतरी बनी हुई है। जो उनके वंशज ठा. प्रतापसिंहजी बदनोर ने बनवाई।

राठौड़ वीर जयमल अत्यन्त बुद्धिमान, वीर, धीर, साहसी, कृतज्ञ, उदार, दूरदर्शी, पितृसेवी, प्रतिज्ञापालक, सच्चे मित्र और महान् रणविशारद व्यक्ति थे। उनकी महानता, त्याग, बलिदान व कर्तव्यपरायणता से प्रभावित होकर शत्रु होते हुए भी बादशाह अकबर ने उनकी गजारूढ़ मूर्ति बनवाकर अपने राजभवन पर लगवाई। शत्रु भी जिनकी प्रशंसा करे, इससे बढ़कर और क्या व्यक्तित्व होगा?

देशी इतिहासकारों ने तो राठौड़ जयमल के उज्ज्वल वीरचरित्र का अपने लेखों और पुस्तकों में वर्णन किया ही है, परन्तु प्रतिपक्षी मुख्य अनुसंधानलेखक भी उनकी अलौकिक वीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह पाए। अबुलफजल, निजामुद्दीन, मुल्ला बदायूँनी तथा फरिश्ता आदि ने इनके साहस की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। वर्तमान काल के यूरोपियन इतिहास के विद्वान् कर्नल टॉड, इलियट स्मिथ, स्ट्रेटन, वाल्ट तथा लेनपुरा ने भी राव जयमल के वीररस से भरे हुए जीवनचरित्र का बहुत ही गौरव के साथ वर्णन किया है। जर्मनी के इतिहासलेखक काउण्ट जोवर ने अपनी लिखी हुई

'अकबर' नामक पुस्तक में जयमल के अद्‌भुत पराक्रम व अनुपम शौर्य का विचार कर उन्हें 'लॉयन ऑफ चित्तौड़' अर्थात् 'चित्तौड़ केसरी' का सम्मान प्रदान किया था।

मारवाड़ के विभिन्न युद्ध अभियानों में मेड़तिया वंश के शूरवीरों ने वीरगति प्राप्त की जिसके उपलक्ष में उनके वंशजों को जो जागीरें प्राप्त हुई उसमें कुल 435 गाँव हैं, जो अन्य राठौड़ों की खापों को मिलाकर भी नहीं होते हैं। मुख्य रूप से इन ठिकानों में रियां, आलनियावास ये सिरायत हैं तथा कुचामन, बडु, बुड़सू, बोरावड़, मिंड़ा, गुलर, जावला, मनाणा, भकरी, धनकोली, बेरी, मिठड़ी, नारायणपुर, पांचोता, लूणावा, चाणोद, फालना इत्यादि बड़े ठिकाने मारवाड़ में थे। इसके अलावा कई छोटे ठिकाने भी जयमलजी के वंशजों के पास रहे हैं।

*

पृष्ठ 7 का शेष

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

कर आक्रमण करने वाला नेपोलियन मैंने तुम्हीं से उधार लिया था और इसीलिए आज मरुभूमि में कमल खिलते हुए तुम्हें नजर आ रहे हैं। मनुष्य सब कुछ कर सकता है, बशर्ते कि उसमें उस कार्य को करने का पागलपन हो। ध्येय निष्ठा और अनन्यता का वह गुरु मंत्र भी मैंने तुम्हारे जीवन से लिया।''

बड़ा आदमी बड़ा दिल रखता है और विनम्र होता है। पूज्य श्री तनसिंहजी ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए बताया-''एक अत्यन्त साधारण घर में जन्म लेकर तुमने अद्वितीय लोक संग्रह कर दिखाया, यह तुम्हीं जैसे गुरु से सम्भव था। समाज के प्रति व्यथा और पीड़ा ही सफलता का गुरु मंत्र है, यह मैंने तुम्हारे से सीखा। तुम्हारे कार्यकलापों से जब मैं पहली ही बार परिचित हुआ, तभी मैं उससे प्रभावित हो गया था और मैंने भी समाज में इसी प्रकार घूमना शुरू किया है। तुम्हारी जीवनी भी लोगों ने लिखी है, जिसमें अतिश्योक्ति भी हो सकती है, पर शब्दों से कहीं अधिक तुम्हारे कार्य बोलते हैं और इसीलिए मैं मानता हूँ कि तुम एक महापुरुष थे।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यप्रणाली को देखा, उसमें सम्मिलित लोगों को देखा, उन लोगों की राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रति रुचि व लग्न को देखा, उनकी निष्ठा व उनके अनुशासन को देखा और उनके दिमाग में एक विचार आया कि यही कार्य मैं अपने पथविचलित और स्वधर्म विस्मृत क्षत्रिय समाज में क्यों न शुरू कर दूँ। यही कार्य अन्य लोग कर तो रहे हैं पर यह कार्य जितना हमारे अनुकूल व अनुरूप पड़ता है, उतना उनके अनुकूल व अनुरूप नहीं लगता इसलिए उनके लिये तो यह कार्य अव्यवहारिक सा लगता है। इसलिए क्या ही अच्छा हो यदि यही गुण हम ले सकते और यही कार्य जिसे अन्य लोग कर रहे हैं, हम ही करें। जबकि यह कार्य भी हम लोगों के लायक है।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने श्री क्षत्रिय युवक संघ की कार्यप्रणाली में बदलाव कर संघ को एक नया रूप प्रदान किया। 22 दिसम्बर, 1946 को नई कार्यप्रणाली अपनायी और इस नयी कार्यप्रणाली के अनुसार समाज में कार्य शुरू किया।

क्षत्रियत्व से च्युत हुए राजपूत समाज को इस कार्यप्रणाली से जोड़ना पूज्यश्री तनसिंहजी ने बेहतर समझा। बिखरे हुए राजपूत समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिये उन्होंने इस कार्यप्रणाली को उपयुक्त माना। इस कार्यप्रणाली के आधार पर सोये हुए राजपूत समाज को जागृत कर क्षत्रियत्व का बोध कराने के लिये पूज्यश्री ने गाँव-गाँव, ढाणी-ढाणी अलख जगाना शुरू की। उनका यह सफर जीवन पर्यन्त चलता रहा। श्री क्षत्रिय युवक संघ को नया रूप प्रदान कर पूज्यश्री तनसिंहजी ने कहा-''यही वह रूप है, गुरु घंटाल! जो मेरे व्यक्तित्व का साकार प्रतीक है। यही वह कार्य है, जिसके लिये जैसे मेरी आत्मा अब तक तड़फ रह थी और अब जैसे उसे संतोष प्राप्त हुआ है। पहली बार हम लोगों को यह भान हुआ है कि हम लोग अन्यों से कहीं अधिक बेहतर हैं।''

(क्रमशः)

मैं उसको ढूँढ रहा हूँ-7

- महेन्द्रसिंह गूजरावास

चला खिलजी मर्यादा लाँघ,
बचाई गोरा बादल पाग।
जली महलों में जौहर आग,
कहाँ है पद्मिनी का सम्मान।
मैं उसको ढूंढ़ रहा हूँ।
जौहर ओ' शाकों के निशान।
कहाँ है रजपूती वो आन।।
मैं उसको ढूँढ रहा हूँ।

1303....., पद्मिनी के अलौकिक सौंदर्य की बात सुन, अलाउद्दीन खिलजी अपने नापाक इरादों के साथ चित्तौड़ पर चढ़ आया। छः महिने तक शाही सेना दुर्ग के घेरा डाले पड़ी रही। जब किसी तरह की कोई सफलता नहीं मिली तो खिलजी ने कपटपूर्वक समाचार भिजवाये कि हम तो केवल आपसे मिलकर पुनः दिल्ली लौट जाना चाहते हैं। इस पर रावळ रतनसिंहजी ने विश्वास कर उससे दुर्ग में मुलाकात की। राजा के प्रति अत्यन्त स्नेह जताकर विदा हुआ तो रतनसिंहजी भी उसे छोड़ने बाहर तक आये। किले की आखरी पोळ पर पहुँचते ही खिलजी के सैनिकों ने राजा को कैद कर लिया।

राजा को कपटपूर्वक कैद कर लेने के समाचार जब दुर्ग में पहुँचे तो रानी पद्मिनी ने गोरा और बादल के साथ मंत्रणा की.....। ''छल का बदला छल से लिया जाये'' और फिर रानी ने संदेश भिजवाया कि पद्मिनी दिल्ली जाने के लिये तैयार है। लेकिन उसकी दो शर्ते हैं, पहली शर्त यह है कि उसके साथ उसकी सोलह सौ सहेलियाँ भी दिल्ली जायेंगी और दूसरी शर्त यह कि दिल्ली रवाना होने से पूर्व एक बार अपने पति रतनसिंह से मिलना चाहेगी। सुलतान ने आज्ञा दे दी। फिर क्या था? सौलह सौ डोलियाँ तैयार की गई, जिसमें पद्मिनी की सहेलियों के वेश में शस्त्र छिपाकर राजपूत वीर बैठ गये। किले से निकलकर सभी डोलियाँ शाही सेना के शिविर के लिये रवाना होती हैं। सबसे आगे की डोली, जिसमें गोरा और बादल बैठे थे, सीधे ही वहाँ पहुँचती है, जहाँ राजा को कैद कर रखा था। पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार बादल, राजा को छुड़ाकर घोड़े पर सवार होकर दुर्ग की राह लेता है जबकि गोरा के नेतृत्व में मेवाड़ी वीरों का सुल्तान की सेना से घोर संग्राम शुरू हो जाता है। गोरा सहित कई वीर रणभूमि में काम आ जाते हैं लेकिन शाही सेना को भारी नुकसान होता है। अलाउद्दीन दिल्ली से और सेना मंगवाता है। और फिर....., विशाल सेना के साथ चित्तौड़ दुर्ग पर आक्रमण कर दिया जाता है। उधर केशरिया का निमंत्रण....., कंसुबा की मनुहारें....., किले के दरवाजे खोल दिये गये, राजपूत वीर केशरिया कर, किले के बाहर निकल शत्रु पर टूट पड़े। भीषण युद्ध होने लगा, यौवन रक्त रंजित होकर नाचने लगा। अपनी आन-बान और शान पर रजपूती अपना सर्वस्व लुटाने लगी।

उधर, दुर्ग के भीतर....., जौहर कुण्ड सजने लगा, युद्ध के परिणाम के साथ शुरू हुआ जौहर स्नान.....। रानी पद्मिनी के नेतृत्व में सोलह सौ क्षत्राणियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये क्षात्र परम्परा का निर्वाह करते हुए जौहर कर लिया।

युद्ध के बाद जब अलाउद्दीन दुर्ग के भीतर पहुँचा तो केवल राख का ढेर मिला, अलौकिक सौंदर्य जलकर...।

कवि प्रदीप ने लिखा, ''कूद पड़ी थी यहाँ हजारों पद्मिनियाँ अंगारों पे'' लेकिन कुछ लोग केवल पैसों के लिये इतिहास को तोड़-मरोड़कर चित्रित करने में लगे हैं। कहाँ है आज इतिहास के उज्ज्वल और गौरवशाली पक्षों को दुनिया के सामने लाने वाले, कहाँ हैं ऐसे इतिहासकार, लेखक, फिल्म मेकर और मिडिया के लोग जो भारत की महान संस्कृति के संवाहकों का आदर करे। कहाँ है पद्मिनी का सम्मान, मैं उसको ढूंढ़ रहा हूँ।

*

विचार-सरिता

(चतुर्विंश लहरी)

– विचारक

मनुष्य की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह अपने आप से अनभिज्ञ है। वह दूसरों का परिचय पाना चाहता है पर अपने बारे में अपरिचित ही रह जाता है। दूसरों के बारे में जो कुछ भी हमने जाना है वह पूर्ण नहीं है। दूसरे के बारे में जितना जाना है वह उतना ही है यह आवश्यक नहीं। हम जितना अपने बारे में जान सकते हैं, उतना दूसरों के बारे में कैसे जान सकते हैं। अपने प्रमाद के कारण हम अपने आपको नहीं जान पाते। जब तक हम अपने आप के बारे में अनभिज्ञ रहेंगे तब तक दु:ख से निजात नहीं पा सकते। सर्वदु:खों का कारण हमारा अज्ञान ही तो है। हमें हमारी जानकारी न होने के कारण ही तो हम दीन हीन बनकर विषयों की चाटुकारिता में अपना अमूल्य समय व्यतीत कर रहे हैं।

जब हम अपने आपको जान जाएंगे तो पता चलेगा कि मैं यह देह, मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ, विचार आदि नहीं हूँ, मैं तो असीम अपार चिदानंद स्वरूप ब्रह्म हूँ। वेद की आज्ञा है कि हम ***तत्वमसि, अहंब्रह्मास्मि, प्रज्ञानमानंद ब्रह्म, अयमात्माब्रह्म आदि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ को समझते हुए ब्रह्म आत्मैक्य बोध से अपने आपको जानें।*** आत्मविस्मृति ही सर्वदु:खों की जननी है और स्मृतिर्लब्धा ही परम सुखों की हेतु है। अज्ञानता हमारा स्वरूप नहीं है यह तो अविद्याजन्य भ्रान्ति है जिसके कारण हम अपने आपको भूल बैठे हैं कि हम सुख रूप हैं, आनन्द रूप हैं। अविद्याजन्य दीनता के कारण ही तो हम दीन-हीन और सर्वसशक्तिमान होते हुए भी अल्पज्ञ बने बैठे हैं। विचारसागर में एक सवैया आया है कि-***दीनता को त्याग नर आपनो स्वरूप देख, तूं तो शुद्ध ब्रह्म अज दृश्य को प्रकाशी है। आपने अज्ञान तें जगत सब तूं ही रचै, सर्व को संहार कर आप अविनाशी है। मिथ्या प्रपञ्च देखि, दु:ख जानि आनि हिये, देवन को देव तूं तो सब सुखराशि है। जीव, जग, ईश होय माया से प्रभासै तूं ही, जैसे रज्जू सांप सीपी रूपा व्है प्रभासी है।।***

किसी ने एक महात्मा से पूछा कि ब्रह्मन् ''सबसे बड़ा पाप क्या है?'' तो महात्माजी ने जो उत्तर दिया वह बड़ा ही ग्राह्य है। उत्तर था-अपने आपको देह मानना ही सबसे बड़ा पाप है। दूसरे की वस्तु पर अधिकार मानना पाप नहीं तो और क्या है। क्योंकि यह देह संघात तो पंच महाभूतों का है। पञ्चमहाभूतों के पञ्चीकरण का नाम देह है जो मूलत: प्रकृति का अंश है। प्रकृति के अंश का आरोप करके अपना-आप बन बैठना क्या कोई मामूली पाप है? अगला प्रश्न था-हे भगवन्! ''सबसे बड़ा पुण्य क्या है?'' तब उत्तर था-अपने आपको परमात्मा मानना ही सबसे बड़ा पुण्य है। पराई वस्तु पर अधिकार मानकर उसी को मैं मानने के पाप से मुक्त होने का यही एकमात्र उपाय और पुण्य है कि हम अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होकर अपने आपको परमात्मा मानें। यही अपने आपका परिचय है।

हम वास्तव में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् हैं। सत्य की परिभाषा यह है कि तीन ही काल में तथा देश, काल, परिस्थिति करके जिसका कभी अभाव न होता हो उसे सत्य कहा जाता है। गीता में भगवान ने कहा-सत्य का कभी अभाव नहीं होता और असत्य कभी भाव रूप से टिक नहीं सकता। विचार दृष्टि से जब देखते हैं तो हमारे होने पन का कभी अभाव नहीं होता। जाग्रत अवस्था में इस विश्व का दर्शन करने वाले के रूप में हमारी मौजूदगी सिद्ध होती है। स्वप्न अवस्था में जाग्रत के प्रपञ्च का अभाव होकर एक विचित्र संकल्प सृष्टि का निर्माण होता है वहाँ भी हम दृष्टा के रूप में मौजूद होते हैं तभी तो जागने के बाद हम कहते हैं कि आज मैंने स्वप्न में हवाई जहाज चलाई और आकाश की ऊँचाइयों

(शेष पृष्ठ 27 पर)

गतांक से आगे

गुजरात में सोलंकी कुल का शासन

संकलन कर्ता–गिरधारीसिंह डोभाड़ा

कुमारपाल :

गुजरात के महाप्रतापी और लोकप्रिय राजा जयदेव जो सिद्धराज जयसिंह के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुए, उन्होंने वि.सं. 1150 से 1199; ईस्वी सन् 1094 से 1142 तक लगभग उनचास (49) वर्ष तक राज किया। उन्होंने गुजरात को हर प्रकार से समृद्ध और सुरक्षित बनाया। सिद्धराज का शासनकाल गुजरात का स्वर्णकाल माना गया है। लेकिन स्वयं सिद्धराज के अन्तिम दिन चिंता में गुजरे थे। कारण था सिद्धराज के गद्दी के वारिस हेतु कोई पुत्र नहीं था। शाकम्भरी के राजा अर्णोराज का पुत्र सोमेश्वर सिद्धराज की पुत्री कांचन देवी का पुत्र था, पर उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने से सोलंकी वंश का राज्य–चाहमान वंश के पास जाए, यह भी उसे पसन्द नहीं था।

जैन मुनि कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने भविष्यवाणी की थी कि सिद्धराज के बाद कुमारपाल पाटण का राजा बनेगा। कुमारपाल सिद्धराज के सौतेले काका क्षेमराज के वंश का था। हालांकि क्षेमराज का पौत्र और कुमारपाल का पिता त्रिभुवनपाल सिद्धराज का दण्डनायक और उसका प्रिय भतीजा था, फिर भी सिद्धराज कुमारपाल का अपना उत्तराधिकारी बनने की बात से प्रसन्न नहीं था। कारण यह था कि क्षेमराज भीमदेव की रानी बकुला देवी, जो कि एक नृत्यांगना थी, का पुत्र था। इस कारण सिद्धराज का कुमारपाल के प्रति व्यवहार कुछ अच्छा नहीं था, जबकि त्रिभुवनपाल के प्रति अपने सगे भाई जैसा प्यार व व्यवहार रखता था। कुमारपाल को भी जैन मंत्रियों और जैन मुनियों ने सिद्धराज का भय दिखाकर उससे दूर रहने का कहा था। कुमारपाल अपनी पत्नी भोपालदेवी (भूपालदेवी) के साथ लाट, मालवा आदि स्थानों में घूमता रहता था।

कुमारपाल जब चित्तौड़ में था तब उसे खबर मिली कि सिद्धराज का अवसान हो गया है। वह पाटण पहुँचने के लिये रवाना हो गया। पाटण पहुँचकर वह अपने बहनोई कन्हड़देव की सहायता से पाटण का राजा बना। सिद्धराज की मृत्यु के अठारह (18) दिन बाद वि.सं. 1199 के मगसिर माह के कृष्ण पक्ष की चौथ, रविवार के दिन कुमारपाल का पाटण की गद्दी पर राज्याभिषेक हुआ। बहन प्रेमलदेवी ने मंगलविधि की। भूपालदेवी महारानी और कुमारपाल महाराजा बना। संकट के दिनों में सहायता करने वाले उदयन मंत्री के पुत्र वाग्भट को अपना महा अमात्य (महामंत्री) बनाया। कुमारपाल अपनी पचास वर्ष की प्रौढावस्था में राजा बना।

कुमारपाल की प्रारम्भिक बाधाएँ :

कुमारपाल प्रौढावस्था में राजा बना था, प्रौढावस्था के कारण प्राप्त अनुभव और अब तक देश–परदेश में घूमते रहने से प्राप्त अनुभवों से वह काफी परिपक्व अनुभवी बन चुका था और सावधानी तथा सजगता से राज्य करने लगा। उसकी शासकीय कुशलता के कारण कुछ पुराने मंत्रियों का महत्त्व कुछ कम होने लग गया। उनकी पूछ कुछ कम हो गई जो उन पुराने अधिकारियों को पसन्द नहीं था। इसलिए ऐसे सभी अधिकारियों ने मिलकर राजा की हत्या का षड़यंत्र रचा। राजा को अपने विश्वास पात्र सरदार द्वारा इसकी जानकारी प्राप्त हो गई। राजा को जिस द्वार से प्रवेश करना था, उस द्वार से प्रवेश न कर दूसरे द्वार से प्रवेश किया और उन षड़यन्त्रकारी लोगों को पकड़कर उनकी हत्याएँ करवा दी।

कुमारपाल को राजगद्दी पर बैठाने में सहायक उसका बहनोई मंडलेश्वर कन्हड़देव (कृष्णदेवराय) बार–बार सबके सामने उसकी मजाक उड़ाता था। कुमारपाल ने अपने बहनोई को ऐसा न करने की विनती कई बार की और बहुत समझाया लेकिन वह नहीं माना। आखिर कुमारपाल ने मल्लों द्वारा उसके हाथ–पाँव तुड़वा डाले और उसकी आँखें फुड़वा डाली। इस प्रकार अपने प्रशासकीय मार्ग में बाधा डालने वाले अधिकारियों एवं अपने स्वयं के बहनोई को पाठ पढाकर अन्य सभी अधिकारीगण और मंडलेश्वरों को उसने काबू में ले लिया।

इन सभी ने मान लिया कि यह राजा कोई सामान्य कोटि का नहीं है और न ही अपने नचाये नाच नाचने वाला है। वह अपनी बुद्धि और अपने अनुभवों से ही कार्य करने वाला है, इसलिए सब उसका आदर करने लगे, मान देने लगे। पूर्व जीवन में उसकी सहायता करने वाले और उसकी बात मानने वालों को राजा ने अपने मंत्रीगण में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।

शाकंभरी विजय :

शांकभरी के अर्णोराज को सिद्धराज जयसिंह ने हराया था। अपनी उदारता दिखाकर सिद्धराज ने अपनी पुत्री कांचनदेवी का विवाह अर्णोराज के साथ करवाया। कांचनदेवी और अर्णोराज का पुत्र सोमेश्वर था। अपना पुत्र न होने के कारण पहले तो सिद्धराज ने सोमेश्वर को अपना उत्तराधिकारी बनाने का विचार किया पर बाद में अपने पुरखों का राज्य दूसरे कुल के पास जाए यह उसे पसंद नहीं आया और अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किए बिना ही उसका अवसान हो गया, उसके बाद कुमारपाल गुजरात का राजा बना।

अर्णोराज चाहता था कि गुजरात जैसे समृद्ध और शक्तिशाली राज्य का राजा सोमेश्वर बने जो कि सिद्धराज का दोहिता था। अर्णोराज ने अन्य राजाओं, जैसे-पूर्वभद्र का राजा, कामशय गाँव का राजा, गोमती का राजा, गोष्ट्या और तैक्या का राजा वाहिकराट्, यकृल्लोम का राजा पट्टचर आदि सूरसेन का राजा आदि की सैन्य सहायता लेकर कुमारपाल को हराकर पाटण का राज्य लेने के लिये आक्रमण किया। कुमारपाल अर्णोराज का सामना करने के लिये अपनी सेना लेकर आबू के रास्ते शाकम्भरी की ओर बढा। इस बीच पूर्व का राजा बल्लाल और सिद्धराज का प्रिय धर्मपुत्र चाहड़ सेना लेकर कुमारपाल का सामना करने आए। चाहड़ कुमारपाल से असंतुष्ट होकर सपादलपा आ गया था। उसने कूटनीति से व घूस देकर वहाँ के राजा व सामंतों को जीत लिया था। कुमारपाल ने बहादुरी से उन दोनों का सामना किया और उन्हें पराजित किया। वहाँ से वह शाकम्भरी की ओर बढा। आबू से आगे बढकर दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ जिसमें अर्णोराज हारा और कुमारपाल से अपनी पुत्री जल्हणा का विवाह करवाकर संधि की। कुमारपाल की यह प्रथम विजय यात्रा थी जिससे उसने महान् कीर्ति प्राप्त की।

कुमारपाल और आबू के परमार :

आबू के परमार राजा ज्यादातर गुजरात-पाटण के साथ रहे थे। वे गुजरात के सामंत थे। जब कुमारपाल ने शाकंभरी से संग्राम किया उस समय उसने आबू के पास पड़ाव डाला था। उस समय आबू में राजा विक्रमसिंह परमार था। वह सोलंकियों का सामंत था लेकिन वह स्वतंत्र राजा बनना चाहता था। वह कुमारपाल के विरुद्ध व्यवहार करता था। जब कुमारपाल का आबू के पास पड़ाव था, उस समय विक्रमसिंह ने कुमारपाल को अपने यहाँ भोजन के लिये निमंत्रण दिया। वह कुमारपाल की हत्या करना चाहता था। कुमारपाल ने राजा बनने से पहले कई वर्ष इधर-उधर भटकने में और संकटों का सामना करने में बिताये थे। वह काफी अनुभवी हो गया था। भोजन के लिये स्वयं न जाकर उसने एक अन्य अधिकारी को भेजा। उस अधिकारी को विक्रमसिंह के षड़यंत्र की गंध आ गई। वह वहाँ से भाग आया और राजा को बताया कि विक्रमसिंह आपकी हत्या करना चाहता था। इस बात पर कुमारपाल ने कोई खास ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह पहले अर्णोराज पर विजय पाना चाहता था। जब वह अर्णोराज को पराजित करके वापस लौटा तो वह सीधा आबू गया और विक्रमसिंह को पदभ्रष्ट कर उसके भाई रामदेव के पुत्र यशोधवल को आबू की गद्दी पर बिठाया। यशोधवल सोलंकी राज्य का संपूर्ण रूप से वफादार व विश्वासु रहा।

कुमारपाल और चाहमान विग्रहराज :

कुमारपाल ने अर्णोराज को पराजित किया। अर्णोराज ने अपनी पुत्री का विवाह कुमारपाल से कर समाधान किया। कुमारपाल के पाटण लौट आने के पश्चात् अर्णोराज के पुत्र जगदेव ने पिता अर्णोराज की हत्या कर दी और अजमेर की सत्ता प्राप्त की। जगदेव के भाई विग्रहराज ने उसे पदच्युत करके अजमेर की गद्दी पर कब्जा कर लिया। इस विग्रहराज ने 'समस्त राजावली विराजित परम भट्टारक महाराजाधिराज' का विरुद धारण

किया और गुजरात की सत्ता से अलग हो स्वतंत्र राजा बना। उसने हिमालय से विंध्य तक के प्रदेशों पर जीत हासिल की। उसने म्लेच्छों का भी पराभव किया। अजमेर में पाठशाला का निर्माण करवाया। हरिकेली नामक नाटक की भी रचना की।

कुमारपाल ने अपने राज्यारोहण के बाद सिद्धराज के समय के सौराष्ट्र के दंडनायक सज्जन को वहाँ से बदलकर चित्रकूट का सामंत नियुक्त कर दिया था। विग्रहराज ने उस सज्जन को भी हराया। कुमारपाल ने सोमेश्वर, जो अर्णोराज और सिद्धराज पुत्री कांचनदेवी का पुत्र था, जो कुमारपाल का अपने कुल की बुआ का पुत्र भाई लगता था, की सहायता कर अजमेर की गद्दी पर बिठाया। अजमेर का राजा जब सोमेश्वर बना तब पुन: सोलंकियों और चाहमानों के बीच सम्बन्ध अच्छे हुए।

कुमारपाल और नडूल के चौहाण :

नडूल (नाडोल) के राजा अश्वराज के समय से पाटण के राजा सिद्धराज के साथ सम्बन्ध अच्छे रहे थे। अश्वराज सिद्धराज का सामंत था। अश्वराज की मृत्यु के बाद रत्नपाल नडूल की गद्दी पर आया। इसके बाद रायपाल सत्ता पर आया। इस रायपाल ने युद्ध में कुमारपाल के विरुद्ध अर्णोराज की सहायता की। इस कारण कुमारपाल ने रायपाल को पदभ्रष्ट किया और नडूल में वणजलदेव नामक दंडनायक नियुक्त किया। कुछ समय बाद कुमारपाल ने अश्वराज के छोटे पुत्र आल्हणदेव को नडूल के राज्य सिंहासन पर बिठाया।

बल्लाल की पराजय :

कुमारपाल और शाकंभरी अर्णोराज के बीच जब युद्ध हुआ तब पूर्व के कुछ राजाओं ने अर्णोराज को ससैन्य सहायता की थी। उसमें पूर्व का राजा बल्लाल भी था। कुमारपाल के ब्राह्मण सेनापति काक ने नान्दीपुर के पास बल्लाल की सेना रोक दी। इधर अर्णोराज पर विजय के बाद कुमारपाल ने सिद्धराज की तरह विजय यात्रा आरम्भ की। उसने एक के बाद एक राजा को पराजित किया। कुछ समय बाद वह पाटण लौट आया। कुछ समय बाद जब वह अर्णोराज की पुत्री जाल्हण देवी के साथ विवाह में व्यस्त था, उस समय परमार राजवी यशोधवल और अन्य सामंतों द्वारा बल्लाल को हराने की खबर मिली। बल्लाल पदमपुर का राजा था जो मालवा में पारा नदी के तट पर बसा हुआ था। कुमारपाल ने पदमपुर की राजकुमारी पद्मावती के साथ भी विवाह किया था।

मल्लिकार्जुन का वध :

मल्लिकार्जुन का वध कुमारपाल का तीसरा प्रसिद्ध पराक्रम था। मल्लिकार्जुन उत्तर कांकण का शिलाहार वंश का राजा था। राष्ट्रकूटों के पतन के बाद लाट के दक्षिण में आए हुए कुछ प्रदेशों पर शिलाहार वंश की सत्ता प्रवर्तमान थी। इस वंश के राजा 'राजपितामह' का विरुद धारण करते थे।

एक बार कुमारपाल ने राजसभा में किसी चारण के मुँह से मल्लिकार्जुन का 'राजपितामह' का विरुद्ध सुना। कुमारपाल यह सहन न कर पाया। उसने राजसभा की ओर देखा। उस समय वृद्ध मंत्री उदयन के दूसरे पुत्र आंबड़ ने दो हाथ जोड़े। सभा विसर्जन के बाद राजा ने आंबड़ से दो हाथ जोड़ने का कारण पूछा तो उसने कहा कि 'आपके मन में ऐसा भाव था कि इस सभा में कोई ऐसा है जो मल्लिकार्जुन का मद उतार सके? आपकी इच्छा समझकर, आपके हुकम को उठाकर, उसके पालन के लिये मैंने हाथ जोड़े थे।' सुनकर कुमारपाल प्रसन्न हुआ और सेना लेकर आंबड़ को मल्लिकार्जुन को हराने के लिये भेजा। आंबड़ ने द्रुतगति से कूच किया और कलविणी नदी पार करके मल्लिकार्जुन को हराने के लिये आक्रमण किया लेकिन आंबड़ मल्लिकार्जुन के सामने टिक न सका। अपनी हार से शर्मिन्दा होकर आंबड़ श्याम वस्त्र धारण करके राजा (कुमारपाल) के समक्ष खड़ा रहा। राजा ने सारी बात जान ली और आंबड़ को प्रोत्साहित करके और बलवान सेना लेकर मल्लिकार्जुन के सामने युद्ध करने के लिये भेजा। इस समय आंबड़ के साथ परमार राजा धारावर्षदेव और अजमेर के चौहाण राजा सोमेश्वर सेना में साथ थे। उनके पराक्रम से आंबड़ जीता और उसने मल्लिकार्जुन के हाथी पर चढकर उसका वध कर दिया। इस युद्ध में कुमारपाल को कोई प्रदेश प्राप्त हुआ हो ऐसा नहीं था बल्कि मल्लिकार्जुन के 'राजपितामह' के विरुद से ईर्ष्या से प्रेरित होकर ही उस पर आक्रमण किया था।

(क्रमश:)

कहानी

– संकलित

एक ब्राह्मण पंडित जगह-जगह जाकर गीताका पाठ सुनाया करते थे। एक बार वे अपने गाँव से दूसरे गाँव के सेठ के निमंत्रण पर उन्हें गीता-पाठ सुनाने के लिये जा रहे थे। रास्ते में एक नदी आई। वहाँ एक मगरमच्छ रहता था। उसने ब्राह्मण से गीता-पाठ सुनाने का अनुरोध किया और कहा कि इसके एवज में वह उन्हें मोतियों की माला उपहार में देगा। ब्राह्मण तैयार हो गया क्योंकि जो भी उसे धन देगा वह उसे गीता का पाठ सुना देगा। ब्राह्मण देव ने उस मगरमच्छ को गीता का पाठ सुनाया और उसने अपने वादे के मुताबिक मोतियों का हार ब्राह्मण को भेंट में दे दिया। गीता-पाठ सुनकर उस मगर को बहुत आनन्द आया। उसने कहा-अगर तुम कल भी मुझे अन्य कोई शास्त्र सुनाओगे तो मैं तुम्हें मोतियों का एक हार और दूँगा।

धन के लोभ में आकर वह ब्राह्मण तैयार हो गया और दूसरे दिन पुनः वहाँ पहुँचा तथा किसी अन्य पवित्र शास्त्र का पाठ किया। उसे सुनकर मगरमच्छ प्रसन्न हुआ तथा एक हार और दे दिया। साथ ही अनुरोध भी किया कि दूसरे दिन आकर फिर किसी अन्य पवित्र शास्त्र का श्रवण करवा दे। कहते हैं इस तरह बहुत दिन बीत गए, पंडित जी वहाँ आते रहे और वह मगरमच्छ उनके पवित्र उपदेश को सुनता रहा। एक दिन उस घड़ियाल ने कहा-पंडित जी आप इतने दिन से आकर मुझे पवित्र वाणी सुनाते रहे, आपकी बातों को सुनकर मुझे अपने पूर्व जन्मों के कृत पापों को धोने के प्रबल भाव होते जा रहे हैं। मेरी इच्छा हो रही है कि अगर आप मुझे त्रिवेणी तक पहुँचा दें तो मैं आपको मोतियों से भरे हुए पाँच घड़े दूँगा।

लालच जो न करवाए सो कम है। पंडित तैयार हो गया उसे त्रिवेणी की यात्रा करवाने के लिये। एक ठेलागाड़ी की व्यवस्था कर, उस पर मगर को डालकर त्रिवेणी की यात्रा के लिये चल पड़ा। त्रिवेणी पहुँचकर उस मगरमच्छ को पानी में उतारा गया। पानी में डुबकी लगाकर वह मगर आनन्द-विभोर हो गया। खुशी के मारे उसकी आँखों में अश्रु ढुलकने लगे। वह पंडित को बार-बार साधुवाद देने लगा। उनका कृतज्ञ हुआ कि पंडित जी की वजह से त्रिवेणी स्नान करने का आनन्द मिल पाया। वादे के मुताबिक उसने पाँच घड़े मोतियों के पंडित जी को दे दिये। घड़े लेकर जब पंडित जी जाने लगे तो वह घड़ियाल जोर से मुस्करा दिया। उसकी हँसी सुनकर पंडित जी ठिठके और हँसने का कारण पूछने लगे। घड़ियाल ने कहा-क्या करोगे जानकर, रहने दो। पंडित जी बोले-नहीं, नहीं। तुम्हें बताना ही पड़ेगा। ठीक है, तब आप ऐसा कीजिए कि आप वहीं जाइए जिस गाँव से हम लोग आए हैं, वहाँ एक धोबी रहता है, उसके पास जो गधा है वही मेरी हँसी का राज बता सकता है। उसने सोचा ऐसी क्या रहस्यमय बात है कि गधा उसे ज्ञान करवाएगा।

पंडितजी रवाना हुए, अपने गाँव पहुँचे तथा उस धोबी को ढूंढ़ा और गधे के पास जाकर कहा-क्या तुम मुझे बता सकते हो कि वह घड़ियाल क्यों हँसा? अचानक गधा मनुष्य की भाषा में बोलने लगा और कहा-महाराज बात तो हँसने की ही है। पंडितजी ने पूछा-ऐसी क्या बात है? जब गधे ने कहा-सुनो! सौ साल पहले इस नगर में एक राजा हुआ करता था। इसी तरह राजा धर्म-शास्त्रों का श्रवण करता था और सुनते-सुनते उसके मन में भी भाव उठ गये कि वह यहाँ से हरिद्वार जाए और वहाँ जाकर गंगा-स्नान करे। अपने सबसे विश्वसनीय सेवक को, जो अंगरक्षक भी था, अपने साथ लेकर राजा निकल पड़ा। हरिद्वार पहुँचकर उसने गंगा-स्नान किया। गंगा-स्नान करते हुए वह इतना आनन्द-विभोर हो गया कि उसने वापस लौटने का विचार त्याग दिया और वहीं जाकर संन्यास-जीवन धारण कर

शेष जीवन को धन्य बनाने का संकल्प कर लिया। राजा ने संन्यास ग्रहण कर लिया और अपने कर्मचारी से कहा- अगर तुम चाहो तो तुम भी यहाँ रह सकते हो और इच्छा हो तो वापस अपने घर भी जा सकते हो। हाँ, अगर जाना चाहते हो तो मैं अपने साथ लाई हुई हजार स्वर्ण-मुद्राएँ तुम्हें भेंट में देता हूँ क्योंकि तुमने मेरी यहाँ तक सेवा की है, मेरा साथ निभाया है। सेवक ने कहा- मुझे तो जाना पड़ेगा राजन्! अभी पोते-पोती, बहूरानी इनको भी तो कुछ लाड़-प्यार कर लूँ। अभी मन तृप्त नहीं हुआ है। वह सेवक स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर लौट आया।

गधे ने कहानी जारी रखी-पंडित जी! वह राजा तो मर कर देवलोक में गया और वह सेवक मरकर मैं गधा बना। क्या आप इस रहस्य को समझे? वह घड़ियाल आपको देखकर इसीलिए हँसा क्योंकि किसी समय मैंने भी यही मूर्खता की थी। मैंने यह नहीं सोचा कि इस संन्यास में ऐसा क्या है जिसके कारण महाराज अपने सारे राज्य का त्याग करके संत बन रहे हैं और मैं कैसा लोभी निकला कि हजार स्वर्ण-मुद्राओं को लेकर वापस आ गया। एक त्याग रहा था दूसरा ले रहा था। राजा ने त्याग करके अपना जीवन सुधार लिया और मैंने लालच में रहकर स्वयं को गधा बना लिया। घड़ियाल इसलिए हँसा कि वह मोतियों के हार, और मोतियों के घड़े देकर त्रिवेणी तक पहुँच गया और तुम त्रिवेणी तक पहुँचकर भी वापस लौट आए।

पृष्ठ 22 का शेष

विचार-सरिता (चतुर्विंश लहरी)

को छूता हुआ अमेरिका पहुँच गया आदि-आदि। सुषोप्ति में जाग्रत व स्वप्न दोनों ही सृष्टियों का अभाव रहता है और हमारी वृत्ति अज्ञान के आश्रित होकर आत्मा में डूब जाती है और हम आनन्द की नींद सोते हैं। परन्तु हमारे वहाँ भी होने का अहसास होता है तभी तो नींद से जागने के बाद हम कहते ही हैं कि आज मैं सुख से सोया और कुछ भी ज्ञात नहीं रहा। वहाँ हमारी वृत्ति गट्ठाकार होने से कोई संकल्प-विकल्प नहीं था और एक आनन्द की अनुभूति होती है जो कि हमारे स्वरूप का स्वाभाविक आनन्द है।

हमारा स्वरूप ''शिवम्'' इसलिए है हम स्वरूपत: कल्याणस्वरूप हैं। हमारे स्वरूप में कभी भी अकल्याण होता ही नहीं है। हमारे में न जन्म दु:ख है, न मरण दु:ख है। हमारे में न रोग है न शोक है। सदैव ही जो सुखरूप, आनन्द रूप रहता है इसलिए वह शिवम् भी है।

हमारे स्वरूप के अतिरिक्त संसार में ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है जो इतनी सुन्दर या इससे अधिक सुन्दर हो। कामदेव की सुन्दरता भी हमारे स्वरूप की सुन्दरता से फीकी है। एकमात्र परमात्मा ही हमारे स्वरूपवत सुन्दर है। सुन्दरता के बिना प्रियता आ नहीं सकती। जो बालक अधिक सुन्दर होता है वह सबको प्रिय लगता है और माता-पिता को तो अति प्रिय होता ही है। 'सुन्दरम' का अर्थ केवल रूप की सुन्दरता से नहीं है। सुन्दर का अर्थ है वह हर प्रकार से सुन्दर होता है। अत: हमारी आत्मा के अतिरिक्त हमें अन्य कोई प्रिय नहीं, सुन्दर नहीं।

साधक की साधना उर्द्धवगामी होनी चाहिए। वह उत्तरोत्तर ऊपर की ओर उठे। वैचारिक दृष्टि से उसके विचार सदैव ब्रह्मात्मैक्य चिंतन से ओतप्रोत होने चाहिए। मनुष्यता से ऊपर उठकर वह देवत्व की ओर बढ़े। उसकी दानवता व पाश्विकता का ह्रास होकर देवत्व से होते हुए उसकी यात्रा ब्रह्मत्व तक चलती रहनी चाहिए। साधक तो वह है जो अनन्त का मुसाफिर है। उसकी यात्रा की मंजिल ब्रह्मानुभूति होनी चाहिए। जब तक वह अनंत में न खो जाय, सर्वदेशीय न बन जाय, तब तक उसकी यात्रा अहर्निश चलती रहनी चाहिए। अनंत के उन मुसाफिरों की संगत करनी चाहिये। उनकी कृपादृष्टि से हमारे भी ज्ञानचक्षु खुल सकते हैं और हम भी अपने आप में टिककर निश्चलता को प्राप्त हो सकते हैं।

शिवोहं! शिवोहं!! शिवोहं!!!

कठोरता का विसर्जन ही करुणा है

– जयसिंह खानपुर

पराक्रम का उपयोग युद्ध के क्षेत्र में भी हो सकता है और धर्म एवं व्यवसाय के क्षेत्र में भी हो सकता है। पराक्रम शून्य है तो निकम्मा है। यह मान लिया गया है कि जो धार्मिक है, उसे सहिष्णु होना चाहिये। एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल आगे कर देना चाहिये। इसमें पराक्रम की भावना नहीं हीनता आ गई।

पराक्रम, क्रूरता, कठोरता और करुणा का अपना-अपना स्थान है। इनका प्रयोग समय और काल के अनुसार होता आया है।

जहाँ पहाड़ है वहाँ उसकी चोटी भी होती है। पहाड़ में सोचने की शक्ति नहीं है, इसलिये चोटी और तलहटी में संघर्ष नहीं है। आदमी विचारशील प्राणी है जो नीचे खड़ा है वह चोटी वाले को देखकर हीन भावना से भर जाता है और जो चोटी पर खड़ा है वह तलहटी पर खड़े व्यक्ति को देखकर अहंभाव से भर जाता है। मनुष्य में लम्बे समय से उच्चता और हीनता का संघर्ष चल रहा है। हमारे यहाँ भी छुआछूत की मानसिकता अपना प्रभाव दिखाती रहती है। न जाने कितने लोगों ने इस परेशानी से मुक्ति पाने के लिये धर्मपरिवर्तन कर लिया। जिस वर्ग ने ऊँचाई प्राप्त की है उसने दूसरे को अपने से निम्न मानकर संतोष की सांस ली है। यह मनुष्य का मद है। मद अधर्म का द्वार है। इसमें प्रवेश करके ही मनुष्य ने दूसरे मनुष्यों के प्रति क्रूर व्यवहार किया है।

मद अधर्म का द्वार है तो मृदुता धर्म का द्वार है। मृदुता के दरवाजे में प्रवेश करने पर ही धर्म रूपी प्रासाद (महल) तक पहुँचा जा सकता है। आदमी तो है किन्तु मृदु नहीं है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि दिन तो है पर प्रकाश नहीं है। प्रकाश के बिना दिन का क्या महत्त्व रह जाएगा? मृदुता, विनम्रता शब्द समान से लगते हैं और इसी से करुणा जुड़ी हुयी है। क्रूरता और कठोरता के विसर्जन के बिना करुणा का होना असंभव है। जिसका हृदय मृदु नहीं है, उसका सिर झुक जाता है, क्या इससे वह मृदु कहलायेगा? मृदु वह हो सकता है जिसके हृदय में करुणा का अविरल स्रोत प्रवाहित है। जिसके हृदय में करुणा लगातार बह रही हो वह दूसरे का शोषण नहीं कर सकता। अपनी सुख सुविधा के लिये दूसरों की सुख सुविधा में बाधा नहीं बन सकता। दूसरे को हानि पहुँचे, वैसा कार्य नहीं कर सकता।

सिंह जब चलता है, तब वह पीछे मुड़कर देखता है। सिंहावलोकन किये बिना अतीत और वर्तमान में सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता। अहम् भाव व्यक्ति को क्रूर बनाता है। क्रूरता प्रतिहिंसा को जन्म देती है। आज यही हो रहा है और इससे बचने का एक ही उपाय है, करुणा। इससे अपने आपको दूसरों से अतिरिक्त मानने की भावना मर जाती है।

दुनियां में कोई भी आदमी भगवान के घर से नहीं आया। हम सब मनुष्य हैं, इसलिये हर मनुष्य दूसरे मनुष्य से मानवीय व्यवहार की अपेक्षा रखता है।

क्रूरता जहाँ है वहाँ धर्म की आशा नहीं की जा सकती। क्रूरता को असत व्यवहार माना गया है। इसलिये व्यवहार के सत् होने में करुणा का होना आवश्यक है। कठोरता को मृदु व्यवहार के साथ मान्यता मिली है। कुम्हार घड़े को पीटता है नीचे उसका हाथ रहता है किन्तु भावना मृदु है। माँ का पुत्र के प्रति और गुरु का शिष्य के प्रति आवश्यकता वश कठोर भाव हो सकता है पर क्रूरता नहीं।

व्यवहार की मृदुता का एक सूत्र है ''यदि आप चाहें तो यह काम करें'' लेकिन इससे व्यवस्था कैसे चलेगी? इसलिये आज्ञा देने का नियम रखा गया। हाँ यह आदेश कि ''करना ही होगा'' यह विशेष स्थिति में ही होगा। सामुहिकता में एक दूसरे की अपेक्षा करनी होती है।

करुणा भाव में सापेक्षता का समावेश भी आवश्यक है। जिसका अर्थ होगा सहानुभूति पूर्वक व्यवहार। समाज का आधार ही सापेक्षता है। उपेक्षा से उदासीनता आती है और दूरी बढ़ती है। व्यस्तता के कारण किसी की बात

(शेष पृष्ठ 34 पर)

सोच को बदलो !

– पेपसिंह कल्लावास

हर इंसान के अपने-अपने विचार होते हैं। यह विचार उसके नजरिए व सोच को प्रदर्शित करते हैं। विचार मन से, आस-पास के वातावरण से, परिवार के संस्कार से, अपने इष्ट मित्र मण्डली से, कक्षा, कॉलेज के सहपाठियों से, सहकर्मियों से, सत्संग से तथा खानदान के उद्‌गम से बनते हैं।

पहले कहा भी जाता था कि ''जैसा खावे अन्न, वैसा ही होता मन''। आज न शुद्ध हवा है न शुद्ध अन्न! न शुद्ध पानी न शुद्ध पर्यावरण! जिधर निगाह पसारो उधर ही अशुद्धता। झूंठ, छल, कपट, चोरी-डकैती, बेइमानी, व्यभिचार, हिंसा, आगजनी आदि-आदि का बोलबाला बढ़ता ही जा रहा है। पूरा का पूरा माहौल विषमय बनता जा रहा है।

ऐसी स्थिति में बालकों, युवाओं, बुजुर्गों को अपने विचारों व सोच पर बल देते हुए अपनी पहचान बनाये रखनी होगी। जिस प्रकार कितनी भी घनघोर आंधी, तेज हवा अथवा तूफान आ जाए तना अपने आपको जड़-स्थिर रख लेता है तथा आपदा से सामना करता हुआ अंत में मुस्कराता हुआ उजड़े नजारे को देखता है।

आज आवश्यकता है तना बनने की। परिस्थितियों से सामना करने की। सीना तानकर मुकाबला करने की। यह सब तभी संभव हो सकता है जब हम स्वयं इसके अनुरूप संभलें। श्रेष्ठता जन्म से नहीं मिलती, यह मानव की सोच और कर्मों का प्रतिफल है। *As we think We become.* लोग अक्सर यह सोचते हैं कि जो हम हैं वह ऊपर वाले की मर्जी पर है। यदि बच्चा घर पर ही बैठा रहेगा तो क्या वह IAS, IPS, IRS, RAS, RPS, व्याख्याता, बाबू, सहकर्मचारी, सिपाही, हवलदार, मेजर, कर्नल आदि किसी भी सरकारी/गैर सरकारी नौकरी में पहुँच सकता है? कत्तई नहीं? उसे मिथक को तोड़ना होगा कि भाग्य में लिखा है तो सब मिल जाएगा।

भाग्य कर्म का साथ देता है। जब बच्चा दौड़ में दौड़ेगा ही नहीं तो प्रथम स्थान कैसे आयेगा? इसलिए भाग्य का सहारा न लेकर कर्म का सहारा लेकर आगे कदम बढावें। वह कदम भी पूर्ण तप, त्याग, मेहनत, परिश्रम, दृढ़ निश्चय के साथ-साथ सूझ-बूझ के साथ हो तब ही इस प्रतियोगी समय में प्रतियोगिता की विजयश्री लेने में कामयाब या सफल हो सकते हैं।

सफलता प्राप्त करने के लिये सफल होना जरूरी है। सफल के लिये प्रयास जरूरी है। प्रयास के लिये उद्देश्य जरूरी है। उद्देश्य के लिये विचार या सोच जरूरी है। साधना तहेदिल से, एकाग्रता होने पर आपको स्वत: ही सफलता की ओर अग्रसर कर देगी।

सफलता मिलने पर आप गद्‌गद् हो जावेंगे तथा अन्तर्मन को खुशी मिलेगी जिसका न कोई नाप होगा न कोई तोल। आप जीवन की ऊँचाइयों को छूने में सफल रहेंगे। आपका जीवन सार्थक हो जायेगा।

तभी तो कहा गया है कि -

सोच को बदलो, सितारे बदल जायेंगे
नजरों को बदलो, नजारे बदल जायेंगे
किश्तियों को बदलो, किनारे बदल जायेंगे
विचारों को बदलो, रूढ़ियाँ बदल जायेंगी
रूढ़ियाँ बदल जायेंगी तो, जिन्दगी बदल जायेगी।।

इसलिये पुराने विचारों, ख्वाबों व झूठी शान शौकत को त्याग कर आदर्श परम्पराओं की सुरक्षा के साथ वर्तमान परिस्थितियों में आवश्यक बदलाव को अपनाकर आगे कदम बढाने होंगे। ऊँचाइयों को इसी तरह छुआ जा सकता है।

विचार तलवार की अपेक्षा अधिक तेज है। विचार नवजीवन प्रदान करता है।

– भारतीय संस्कृति से

भक्त शिरोमणि मीरा बाई

– आलेख एवं चित्रांकन ब्रजराजसिंह खरेड़ा

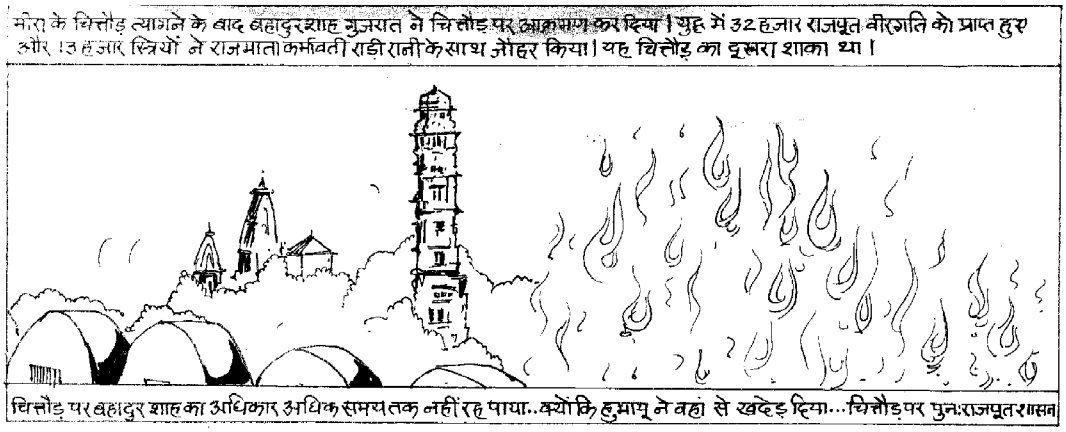

मीरा अपने प्रियतम की क्रीड़ा भूमि की ओर चल पड़ी

वृंदावन सीमा में प्रवेश हुआ तो मीरा रथ से उतर गई...

देव भूमि है यह! इस मिट्टी को तिलक लगा कर मैं धन्य हो गई। कान्हा के कोमल चरणों का पावन स्पर्श इसे बारम्बार मिला है

पैदल चलते चलते पांव में छाले पड़ गये...

बाईसा!, अब हमसे देखा नहीं जाता,.. आप रथ में विराजो!

देखो खून भी निकल आया.. अब चलने नहीं दूंगी..

आवरी.. इस क्षेत्र के हर डगर पर कान्हा के चरण पड़े हैं... मैं चल रही हूं तो मुझे उन श्री चरणों के स्पर्श का आनंद मिल रहा है।.. मत रोक मुझे, उस आनंद से वंचित न कर।

राह में विश्राम के लिए ठहरते.. मीरा तानपुरा लेकर गाने लगती.. मुंह से निकले बोल नये भजन को जन्म देते...

चालो मन गंगा जमना तीर।
गंगा-जमना निर्मल पाणी, सीतल होत सरीर॥
बंशी बजावत गावत कान्हो संग लियाँ बलवीर॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै कुण्डल झलकत हीर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कंवर पर सीर॥

अपनी बात

समाज में फैली असत्य धारणाएँ, जो लम्बे समय से चली आकर समाज की शिराओं में समा चुकी हैं, उन्हें हटाने के लिये यदि सत्य की घोषणा की जाए तो विरोध स्वाभाविक है। असत्य ने अपना इतना जाल फैला रखा है कि उनके सामने सत्य को रखते ही चारों तरफ बेचैनी फैल जाती है। सत्य की वाणी बन्द कर दो, सत्य कहने वालों का बहिष्कार कर दो, इसकी सब तरह की चेष्टाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। पर इससे असत्य के समर्थकों से नाराज होने की कोई आवश्यकता नहीं। यह तो स्वाभाविक है। उन पर करुणा कीजिए कि वे असत्य को छोड़कर जीवन को सार्थक पटरी पर नहीं ला पा रहे। इस सम्बन्ध में बुद्ध से सम्बन्धित एक घटना है।

भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को कहा था कि तुम जिन लोगों को समझाने जाओगे, वे ही तुम्हें मारेंगे, कष्ट देंगे। तुम अनुकम्पा से सत्य देने जाओगे, वे ही तुम पर पत्थर फेंकेंगे। तो नाराज मत होना। उनकी भी मजबूरी है, वे भी क्या करें? सदियों-सदियों तक उन्होंने जो सत्य माना था, तुम उसे तोड़ने आ गए। तुम उनका भवन हिलाने लगे। इसी भवन को उन्होंने अपनी सुरक्षा समझा था। तुम उनकी दीवारें गिराने लगे। वे नाराज होंगे ही।

उनका एक शिष्य था पूर्ण। बुद्ध का संदेश लेकर वह यात्रा पर जाने लगा। बुद्ध ने पूछा-तू कहाँ जाएगा? बिहार का एक हिस्सा था 'सूखा'। उसने कहा कि 'सूखा' अब तक कोई भिक्षु नहीं गया, वहाँ जाऊँगा। बुद्ध ने कहा-वहाँ तू न जा तो अच्छा है, उस इलाके के लोग बड़े खतरनाक हैं, इसलिए अब तक कोई भिक्षु वहाँ पर गया नहीं। वे चूकेंगे नहीं, तुझे गालियाँ देंगे, तब क्या होगा?

पूर्ण ने कहा,-वे मुझे गालियाँ देंगे तो मैं अपने आपको धन्यभागी समझूंगा कि उन्होंने मुझे सिर्फ गालियाँ ही दी हैं, मारते नहीं हैं। बुद्ध ने कहा-और यदि उन्होंने तुझे मारा, फिर तुझे क्या होगा पूर्ण? तो पूर्ण ने कहा कि मैं अपने आपको धन्यभागी समझूंगा कि मारते ही हैं, मार नहीं डालते हैं। बुद्ध ने कहा-एक सवाल और, अगर वे तुझे मार ही डालें, तो मरते-मरते तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा कि और क्या होगा-यही कि कितने भले लोग हैं कि उस देह से छुटकारा दिला दिया जिस देह में रहता तो शायद कोई भूल-चूक हो जाती, अब भूल-चूक नहीं हो सकेगी। उस देह से छुटकारा दिला दिया जिस देह में रहता तो शायद कहीं पैर गलत रास्तों पर पड़ जाते, कुछ से कुछ हो जाता, उस देह से छुटकारा दिला दिया। उनके प्रति अनुकंपा से भरा हुआ मरूंगा। उनके प्रति कृतज्ञता से भरा हुआ मरूंगा।

बुद्ध ने कहा-फिर तू जा, फिर तू कहीं भी जा। तू जहाँ भी जाएगा, वहीं तेरे मित्र पाएगा। क्योंकि तुझे अब शत्रु दिखाई नहीं पड़ सकता। नहीं दिखाई पड़ने से शत्रु नहीं हो जाता है, ऐसा नहीं है। मगर जिसको शत्रु दिखाई पड़ना बन्द हो जाता है, वही सत्य की उद्घोषणा कर सकता है। शत्रु तो होंगे पैदा, तत्क्षण पैदा हो जाएंगे। सत्य के शत्रु निरंतर पैदा होते हैं। हमारी इतनी समझ कहाँ है कि हम सत्य को समझ पाएँ। हमारी छाती इतनी बड़ी कहाँ है कि हम सत्य को हमारे भीतर समाविष्ट कर लें, अपने भीतर मेहमान बन जाने दें। हम आतिथेय बनें सत्य के, सत्य अतिथि बने-इसकी हमारी पात्रता कहाँ है? इसलिए निरंतर यह होता रहा है। निंदा होती रही, उपेक्षा होती रही, मगर सत्य अपनी उद्घोषणा बार-बार करता रहता है।

भौतिक सम्पदा के प्रति आकर्षित व्यक्ति निस्वार्थ समाज सेवा की बात कभी स्वीकार नहीं कर सकेगा। सदाचार की बात का विरोध दुराचारी करेगा ही। राजनीति में कुछ पद पाने की इच्छा वाला व्यक्ति निर्मल व्यवहार की सीमाएँ तोड़ने में नहीं हिचकिचाएगा। ऐसा सदा ही होता रहा है और आज के मर्यादा विहीन वातावरण में तो सद के विरोध की लहर खूब बह रही है। इसे स्वाभाविक न मानना भूल होगी।

संघ को प्रारम्भ से ही खूब विरोध का सामना करना पड़ा है।, आज भी करना पड़ रहा है और भविष्य में भी करना पड़ेगा ही। पर संघ ने कभी किसी को शत्रु नहीं माना। विरोध को सहा है और उसे सहज गति से बुझने दिया है। इसी रीति से चलते रहने पर कई विरोधी भी सहयोगी बने हैं। विरोधी भी कई बार हमारे मददगार ऐसे बन जाते हैं कि जिस बात की ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया हो, उसे इंगित करके हमें सावधान कर देते हैं कि समाज में ऐसी भ्रांतियाँ भी फैलाई जा सकती हैं। इसलिए विरोधी के प्रति बुद्ध के शिष्य पूर्ण की तरह अनुकम्पा का भाव न भी हो तो मन ही मन आभार का भाव तो रखना ही चाहिए।

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
01.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	ददरेवा–जिला–चूरू।
02.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	भण्डारी–डीडवाना से भण्डारी पहुँचें।
03.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	धनोपमाता–शाहपुरा–केकड़ी रोड़ पर स्थित।
04.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	8.10.2017 से 11.10.2017	जैसलमेर–राजपूत छात्रावास।
05.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	8.10.2017 से 11.10.2017	महरोली–जिला–सीकर।
06.	मा.प्र.शि.	8.10.2017 से 14.10.2017	बहादुरपुरा दूधवा, बाड़मेर–चोहटन सड़क मार्ग पर दूधवा से 5 कि.मी. दूर उच्च प्राथमिक विद्यालय।
07.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	दौसा। कैलाश जाली का फार्म हाउस, सूरजपुरा रोड, सरस डेयरी प्लांट के सामने। सम्पर्क–महेन्द्रसिंह चावंडेडा–9571179921
08.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	मूण्डरू– जिला सीकर। प्राथमिक शाला
09.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	डेह–कुंजलमाता मंदिर, नागौर से लाडनू रोड पर 30 कि.मी.। पहले इसका समय 28 सितम्बर से 1 अक्टूबर सूचित किया गया था।
10.	प्रा.प्र.शि.	9.10.2017 से 12.10.2017	लूद्रवा–जैसलमेर से पूनमनगर मार्ग पर स्थित है।
11.	मा.प्र.शि.	9.10.2017 से 15.10.2017	ऋषि मगरी–चित्तौड़–उदयपुर वाया मावली रोड पर पाडोली माताजी उतरें, पाडोली से 2 कि.मी. दूर स्थित।
12.	मा.प्र.शि.	9.10.2017 से 15.10.2017	गुढा श्यामा–धारेश्वर महादेव मंदिर। सोजत रोड से गुढा श्यामा के लिये हर घंटे बस, वहाँ से वाहन की व्यवस्था।
13.	मा.प्र.शि.	9.10.2017 से 15.10.2017	नौसर, माल्लिनाथ जी मंदिर। सिणधरी, बालोतरा, बायतु से बसें उपलब्ध।
14.	मा.प्र.शि.	9.10.2017 से 15.10.2017	राजमथाई–पोकरण से बस है।
15.		9.10.2017 से 12.10.2017	गोकुल। बज्जू से सुबह 8 बजे व दोपहर 1.30 बजे व बीकानेर से बस है।
16.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	12.10.2017 से 15.10.2017	उदयपुर–मीरा मेदपाट भवन, चित्रकूट नगर। पूर्व में इसका समय 8 से 11 अक्टूबर सूचित था।

17.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	13.10.2017 से 16.10.2017	जोधपुर-बी.जे.एस. कॉलोनी। पूर्व में इसका समय 9 से 12 अक्टूबर था।
18.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	15.10.2017 से 17.10.2017	सोनू (जैसलमेर)।
19.	प्रा.प्र.शि.	21.10.2017 से 24.10.2017	चितावा। कुचामन-सीकर मार्ग पर स्थित।
20.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	21.10.2017 से 24.10.2017	पोकरण। रेल व बस उपलब्ध।
21.	मा.प्र.शि. (बालिका)	23.10.2017 से 29.10.2017	काणेटी-बालिका प्राथमिक शाला। अहमदाबाद से 20 कि.मी. दूर साणंद और साणंद से 2 कि.मी. दूर काणेटी।
22.	मा.प्र.शि.	23.10.2017 से 29.10.2017	वडासण-कड़ा माणसा रोड। महसाणा।
23.	बाल शिविर	28.10.2017 से 29.10.2017	तपोभूमि विद्यापीठ बुड़ीवाड़ा। बालोतरा-पादरू मार्ग पर बालोतरा से 18 कि.मी. दूर।
24.	प्रा.प्र.शि.	2.11.2017 से 5.11.2017	धरियावद। क्षत्रिय सभा भवन। चारों तरफ से बसें उपलब्ध।
25.	बाल शिविर	4.11.2017 से 5.11.2017	सांचोर-सोलर इंटरनेशनल स्कूल।

* जोध्यासी शिविर जो 8 से 11 अक्टूबर तक होना सूचित किया गया था, वह 28 सितम्बर से 1 अक्टूबर तक सम्पन्न हो चुका।
* 28 सितम्बर से 1 अक्टूबर तक केकड़ी में होना सूचित किया गया शिविर अभी स्थगित कर दिया गया है।
* 21 सितम्बर से प्रारम्भ होने वाला नारणावास शिविर अब नवम्बर माह में होगा।

राजेन्द्रसिंह बोबासर
शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

पृष्ठ 28 का शेष **कठोरता का विसर्जन ही.....**

को ध्यान से नहीं सुना गया तो लगता है मेरे प्रति निरपेक्ष व्यवहार हो रहा है। ऐसा सम्बन्धों में हो सकता है तो दूसरों की स्थिति तो और चिन्तनीय है। हर व्यक्ति चाहता है मेरी अपेक्षा हो। सापेक्षता में कठोर व्यवहार भी खलता नहीं। अच्छा व्यवहार करते हुये भी निरपेक्ष भाव झलके तो सामने वाला कहेगा, यह तो ऊपर का व्यवहार है, दिखावा है। जितनी सहानुभूति की जरूरत हो उसकी कमी होने से सम्बन्धों में कटुता आ सकती है। सापेक्ष भाव की परिपूर्णता होने पर भी अगर कोई आवश्यकता से कम बात करे तो इस कारण उसे अव्यावहारिक बताया जा सकता है। चाहे उसने असत् व्यवहार नहीं किया हो, पूरा जीवन करुणा, त्याग और सेवा में लगाया और इतना मूर्ख भी नहीं रहा हो कि अपने बच्चों को भूखा रखकर दूसरों को रोटियाँ बांट दानवीर कहलाने का प्रयास किया हो। व्यस्तता वश कहें अथवा परिस्थिति वश जितनी सापेक्षता बरतनी चाहिए थी, नहीं बरत सका हो प्रत्येक को *Resposne* देना अथवा हर जगह उपस्थित होना संभव नहीं हुआ हो इसलिये वह अव्यावहारिक बन गया।

घर के मुखिया इस ओर जागरूक नहीं होते तब प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इसीलिये प्रमुख व्यक्ति इस ओर सजग रहते हैं।